ल्य३)
7/60
मनुष्य बनो
BE MAN
मनुष्य बनो
انسان بنو
संरक्षक
परमसंत दयाल फकीर चंदजी महा

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज बर्मन एम० ए०

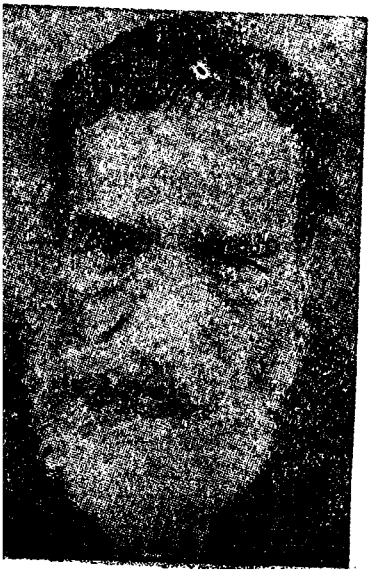

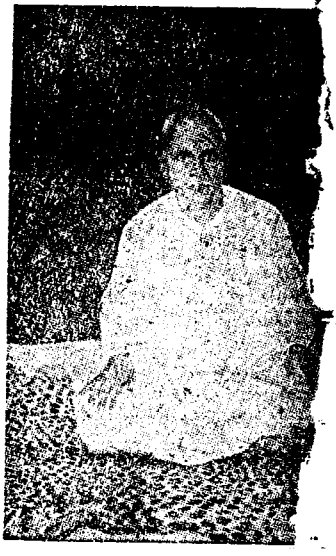

* विषय-सूची *

लेख	लेखक	पृष्ठ संख्या
१—हमारी बात	मैनेजर	२
२—प्रार्थना	....	३
३—कहानी रानी कलावती	दातादयाल महर्षि जी	४
४—कर्म भोग अथवा मौज	परमदयाल फ़क़ीर साहब	७
५—चेतावनी	....	११
६—कर्म भोग अथवा मौज	परमदयाल फ़क़ीर साहब	१२
७—पूर्ण पुरुषों की महानता	दातादयाल महर्षि जी	१६
८—चेतावनी	....	२०
९—ग़ज़ल पीरे मुग़ाँ साहब	....	२१
१०—परमदयाल जी के प्रवचन अलीगढ़ में शिव रात्रि पर	....	२२
११—दातादयाल जी का विनोद	....	२७
१२—कर्म भोग अथवा मौज	परमदयाल फ़क़ीर साहब	२८
१३—दयाल नन्दू भाई जी महाराज के अनमोल वचन	....	३६
१४—Speech of Pt. Jawahar lal ji Nehru		४३

(पृष्ठ दो का शेष)

नहीं मिल सकता। जो दे सकते हो दो। तब प्रेम का नाम लो। तन दो, मन दो, धन दो। जो दोंगे वही मिलेगा। यह प्रकृति का नियम है। प्रकृति के अनुसार अपना जीवन बनाओ गुरू आज्ञानुसार जीवन बिताओ, सतसंग करो। फिर यही संसार आपके लिए स्वर्ग धाम बन जायगा और आप प्रसन्न चित रहने लगेंगे यदि आप चाहते हैं कि मनुष्य बनो पत्रिका आपकी अधिक से अधिक सेवा कर सके तो इसके कार्य में हाथ बटाइए और नवीन ग्राहक बनाइए। गुरू दया करें। राधास्वामी परमदयाल सतगुरू आपका कल्याण करें।

❀ हमारी बात ❀

हम हैं 'खुशदिल', हमको इत्मीनान है।
खुश हमारा जिस्म, दिल और जान है॥
क्या बतायें किस तरह से, यह खुशी हासिल हुई।
'विश्व प्रेमी हमें बनाया, प्रेम ही का गान है॥

हमारे प्रेमी पाठको! वास्तव में हम सब बड़े भाग्यशाली हैं जिन्हें सतगुरु की प्राप्ती हुई। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जीवन गुरु कृपा से प्रसन्न मय और आनन्द मय है। चूँकि अपनी दशा ऐसी है इसलिए हम समझते हैं कि आप सब भी ऐसे ही होंगे। यदि यह दशा प्राप्त नहीं हुई तो हे! मेरे प्रसन्न चित पाठको! आप भी उस आनन्दमय सतगुरु परमदयाल के उद्देश्य को पूर्ण करने लग जाओ। और इस प्रकार प्रसन्न रहने, प्रसन्न बनने, प्रसन्न करने और प्रसन्न कराने के रहस्य को सीखो। वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति उस आनन्दमय सर्वाधार से प्रथक नहीं। किंतु प्रश्न है तो उसके साथ एक स्वर अथवा बे स्वर होने का। इसलिए उससे एक स्वर एक ताल होकर, प्रसन्न, पवित्र, निर्भय और अचिंत हो जाओ। यह तभी संभव है जब आप उसका कुछ कार्य करें आपका फिर निष्काम कर्म हो जायेगा। बिना कर्म के छुटकारा नहीं। "यह तो करना ही पड़ेगा सूरते इन्सान में।" जब तक जीना, तब तक सीना। सोच लो! समझ लो। यदि हमारे साथ स्वर में स्वर मिलाना चाहो, हाथ बटाना चाहो, तो यही कार्य आपका निष्काम कर्म हो जाएगा। और संसार से छुटकारा दिलाएगा मैं के बदले में तू ही तू की सदा आने लगेगी।

मैं से परे जो होगा उसमें प्रेम होगा।
मज़हब यही है सच्चा, उसमें न नेम होगा॥

यही सन्तमत है। प्रेम प्रीति नहीं तो कुछ भी नहीं। प्रेम पूर्वक इसे अपनाइए, अपना काम बनाइये, औरों के काम आइये। प्रेम में देना ही देना है। प्रेम दो प्रेम लो। बिना दिए कुछ भी

(शेष पेज प्रथम पृष्ठ पर)

R. S.

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदंपूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ८ | जौलाई १९६० आषाढ़ २०१७ वैक्रम | सं० १०/९४

❀ प्रार्थना ❀

काम करता हूँ तेरा, स्वामी सदा निष्काम बन ।
लाभ की और हानि की, चिंता नहीं कुछ मेरे मन ॥
मौज का लेकर सहारा, हूं मैं जीवन काटता ।
चाहे रक्खे घर में, चाहे भेज दे तू सघन बन ॥
चित में क्यों हो भ्रान्ती, जब तू सहायक होगया ।
आस है तेरी दया की, और नहीं कोई जतन ॥
जीने की इच्छा नहीं, मरने से भय खाता नहीं ।
दोनों ही सम होगये हैं, मुझको अब जीवन मरन ॥
राधास्वामी नाम हो, होठों पै सोते जागते ।
राधास्वामी का हो निशदिन, ध्यान और सुमिरन भजन ॥
जग की लीला देख ली, स्वारथ के हैं साथी सभी ।
अपना कोई भी नहीं, इससे लगी तुझसे लगन ॥
स्तुती निंदा का डर, मन को सताता अब नहीं ।
मैं हूँ जैसा जानता है तू, करूँ मैं क्या कथन ॥
मेरे दाता दीन हूँ, आधीन हूं मैं सर्वदा ।
यह दया कर तेरी बानी, का रहे शरवन मनन ॥
राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी नाम लूँ ।
राधास्वामी छोड़कर, भावे नहीं कोई वचन ॥

—❀—

कहानी रानी कलावती

(ले० दातादयाल महर्षि जी महाराज)

क्या ख़ुल्क़ है क्या रफ़क़ है, क्या तर्ज़ है क्या शान।
सीरत में मलक कहने को गो सूरत में इन्सान ॥
इस नफ़्स कुशी, ऐसी वफ़ादारी के क़ुर्बान।
दींदारी है तक़वार है, ज़हे दीन ज़हे ईमान ॥
रुतबे में ज़्यादा, मलको हूर से यह हैं।
जलवे में फ़ज़ूँ, रौशनीए तूर से यह हैं ॥

करनसिंह राजपूताने प्रान्त के किसी राज्य का राजा था, कलावती उसकी रानी थी। जिस समय अलाउद्दीन खिलजी जेसलमेर को नष्ट करके चित्तोड़ की ओर दुबारा आक्रमण करने के लिये आ रहा था, मार्ग में राजा कर्णसिंह के राज्य में होकर निकला। अलाउद्दीन खिलजी पूर्ण रूपेण दैवी कोप था। जिस ओर मुख करता था उसी ओर कोलाहल मच जाता था। मार्ग में जिधर से इसकी सेना निकलती थी, ग्राम, नगर जला दिये जाते थे, खेत उजाड़ दिये जाते थे और सहस्रों निर्दोषों के सिर गाजर-मूली की भाँति उड़ा दिये जाते थे, दो तीन मुग़ल सम्राटों के अतिरिक्त शेष समस्त मुसलमान सम्राट वह ऊधम मचा गए कि जिनके विचार करने से रोम खड़े हो जाते हैं। किन्तु वह जो काम कर गए वह धर्म की आड़ में कर गए। अलाउद्दीन खिलजी को स्लाम-धर्म से इतना प्रेम नहीं था। वह स्वयं चाहता था कि किसी अन्य धर्म को अपने नाम से प्रचलित करे। उसने भी इस भाँति अत्याचार किए हैं कि इतिहास पढ़ने वाले सदैव इसके नाम को दुख पूर्वक स्मरण करते रहेंगे। यह बड़ा साहसी सम्राट हुआ है। इसने अपनी लूटमार केवल पंजाब, मध्यभारत अथवा राजपूताने तक ही सीमित नहीं रक्खी वरन् इसकी सेना टिड्डी दल

की भाँति चारों ओर रक्तपात करती हुई सेतुबन्द रामेश्वर तक गई थी। और वहां भी इस अत्याचार की स्मृति में सैकड़ों मंदिर तोड़कर एक मसजिद बनाई थी।

जिस समय अलाउद्दीन खिलजी लूट मार करता हुआ राजा कर्णसिंह के राज्य से निकला तो राजपूत राजा इसका सामना करना उचित समझ कर बाधक हुआ। घमासान युद्ध हुआ। राजा शक्तिहीन था, सेना बहुत कम थी, यद्यपि बहादुरी घुट्टी में पड़ी थी। किन्तु राजपूत परस्पर मेल जोल के लाभों से अपरिचित हो चुके थे और इसी कारण इतनी अधिक सेना भी एकत्रित नहीं कर सकते थे जो आवश्यकता के समय शत्रुओं का सामना करती। फिर भी राजा कर्णसिंह ने अपने व्यक्तिगत साहस और बहादुरी से शत्रु के छक्के छुड़ा दिये। अलाउद्दीन खिलजी को इने गिने राजपूतों से युद्ध के माग में परास्त होने का अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उसने निशाना ताककर राजा कर्णसिंह को तीर मारा। तीर के लगते ही राजा कर्णसिंह पृथ्वी पर आ गिरा। आजकल की रीति के विरुद्ध उस समय सेना की हार केवल सरदार के व्यक्तित्व से ही सम्बन्धित रखती थी। राजा कर्णसिंह के घोड़े को खाली देखकर हल्ला मच गया। पैदल और सवार सब घबरा गये। कर्णसिंह बेचारे की तो बुद्धि भी ठिकाने नहीं थी। मुसलमान ताक में थे कि किसी प्रकार घायल राजा को गिरफ़्तार करलें और वह निर्भय होकर आगे बढ़े आ रहे थे। किन्तु कुशलता यह थी उसकी रानी कलावती युद्ध क्षेत्र में साथ आई थी। उसने अपने पति को तो उसी समय डोली में बिठाया और आप उसके स्थान पर आकर सैनिकों को उकसाने और युद्ध करने के लिये उत्सुक करने लगी। वह अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित थी और उसकी कमान से जो तीर निकलते थे वह एक दो को घायल करके छोड़ते थे। ऐसा कायर पुरुष कौन जो ऐसी साहसी स्त्री के आधीन

रहकर पीठ दिखलाता। घमासान युद्ध होने लगा। क्षण-मात्र में दोनों पक्षों के सहस्रों व्यक्ति पृथ्वी पर लेट रहे। कुछ मनचले मुसलमान डोली की ओर झुके। रानी ने तलवार हाथ में लेकर उन सबको एक-एक करके मार गिराया और इस प्रकार सूर्यास्त तक युद्ध होता रहा।

संध्या समय जब युद्ध समाप्त हुआ तो अलाउद्दीन खिलजी की सैना विश्राम करने की अपेक्षा राजपूतों के भय से आगे को बढ़ी और बाँके राजपूतों ने अपनी राजधानी में जाकर दम लिया।

राजा कर्णसिंह के शरीर से तीर निकाल लिया गया। किंतु वह कष्ट में था। वैद्यों को औषधि चिकित्सा के लिए बुलाया गया उन सब ने एक मत होकर कहा कि तीर विष में बुझा हुआ था अब कोई चिकित्सा लाभदायक न होगी। हाँ! यदि किसी प्रकार कोई व्यक्ति राजा का रक्त चूसले तो वह बच जायगा। किन्तु विष चूसने वाला निःसन्देह मर जायगा। राजा कर्णसिंह को यह स्वीकार नहीं था कि कोई प्राणी उसके लिये जान दे। सम्भवतः उस समय विष-चूसक कोई यन्त्र नहीं रहा होगा।

थोड़ी रात्रि बीतने पर जब राजा सो रहा था तो रानी कलावती ने औषध सुँघाकर उसे बेसुध कर दिया और स्वयं अपने मुख से विष चूसने लगी। राजा कर्णसिंह को पता तक न लगा और उसने क्षण मात्र में उसका समस्त विष चूसकर फेंक दिया। राजा तो बच गया किन्तु प्रातः दो तीन घन्टे दिन चढ़ने के पश्चात् रानी कलावती की दशा चिन्ता जनक होने लगी। जब देखा कि अब समय निकट आता जाता है, उसने राजा कर्णसिंह से कहा, "राजन्! मैं आपकी स्त्री और प्रजा हूँ। मेरी जैसी सहस्रों जानें आप पर न्यौछावर हों। मैं नहीं चाहती थी कि मेरे जीते जी मेरा सिर मौर संसार से सिधारे। मैंने आपका विष चूस लिया है और अब उसके प्रभाव से थोड़ी देर में मेरा इस

संसार से कूच होगा। आप अपने चरण मुझे दीजिये जिससे कि मैं उन्हें पकड़े हुए अपने शरीर को त्याग सकूं।"

सभ्य तथा सदाचारिणी रानी का समय आ चुका था। किसी भी प्रकार का उपाय उसे मृत्यु के मुख से बचा नहीं सकता था। उसके पतिव्रत भाव को देखकर शक्तिहीन कर्णसिंह ने अपने चरण आगे बढ़ाये। उसने दोनों हाथों से पकड़ कर मुख के निकट लगा लिया और इस प्रकार देखते देखते प्राण त्याग दिये।

राजा कर्णसिंह यद्यपि अच्छा हो गया किन्तु अपनी प्रिय रानी के वियोग से सदैव दुखी रहा। कुछ तो विष का प्रभाव था और कुछ घटना ने उसके हृदय पर चोट पहुंचाई। अन्तिम जीवन में उसके होठों पर कभी मुस्कराहट का चिन्ह नहीं देखा गया। उसके कोई सन्तान नहीं थी, किन्तु लोगों के बहुत कहने पर भी उसने विवाह नहीं किया और अन्तिम आयु में पहुँच कर संसार से सिधार गया।

यह इस प्रकार की सचरित्र देवियां थीं जिनके कारण भारत वर्ष को विशेष प्रकार के गौरव का पद प्राप्त था।

इस तरह का दिलसोज़ न होगा कोई जिनहार।
देखा कभी दुनियाँ में न यह उनस न यह प्यार॥
बुलबुल को भी यह इश्के गुलिस्तां नहीं होता।
परवाना भी यूँ शमाँ पर कुर्बां नहीं होता॥

कर्म भोग अथवा मौज

ले० परमदयाल फ़कीर साहब

मौज हिलाती है दिमाग़ मेरा ज़िन्दगी के अनुभव बाद।
लिख रहा हूँ सार जुस्तजू ज़िन्दगी के खोने के बाद॥

आहा ! किन्तु जो कुछ कहना चाहता हूं जन साधारण मानेंगे नहीं, वे प्रमाण चाहते हैं। इसलिये सन्तों की वाणी का उल्लेख करता हूँ। प्रथम हुजूर परम पुनीत राय बहादुर सालिग राम साहब की वाणी है "सौ वर्ष की आराधना से ढाई घड़ी का सतसंग श्रेष्ठ है। यही बात हुजूर सांवले शाह भी कहा करते थे। दातादयाल महर्षि जी महाराज का एक शब्द जो मेरे नाम था इस प्रकार है—

"एक बात में मुक्ति फ़कीरा, एक बात में मुक्ती।
कान इधर ला कह दूँ तुझ से, कर गुरु का सतसंगा ॥"

हुजूर सरदार बहादुर बाबा जगतसिंह जी ने एक दो बार सतसंग में वर्णन किया था कि अनामी पद के आगे भी बहुत कुछ है और आने वाले सन्त उसको व्यक्त करेंगे।

इसके साथ ही मैं इस मार्ग पर चलने वालों के ध्यान को इस एक बात की ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि हिन्दुओं में उस मालिक को 'परम तत्व' कहा, मुसलमानों ने 'ज़ात' का शब्द प्रयोग किया, गुरु नानक साहब ने 'अकाल पद' कहा, सत कबीर और राधा स्वामी दयाल ने 'अनामी पद' रक्खा, फिर हुजूर सालिगराम जी महाराज ने क्यों शब्द 'राधा स्वामी' गढ़ कर पँथ की नींव डाली। उनकी आर्थिक दशा बहुत ही अच्छी थी। साँसारिक मान-पद भी कम नहीं था। किसी धन और मान के विचार से देखा जाय तो इस शब्द 'राधास्वामी' के कारण विरोध हुए। अन्त में कोई कारण अवश्य होना चाहिए जिसके लिये उन्होंने यह पृथक शब्द गढ़ कर पंथ की नींव डाली और आज राधास्वामी लगभग प्रत्येक स्थान पर फैला हुआ है।

मेरा समस्त जीवन इसके साधन में व्यतीत हुआ और मैं जिस परिणाम पर पहुँचा हूँ वह यह है कि मानवीय जीवन

विभिन्न प्रकार के शङ्का, संदेह, भ्रम, इच्छा और आशाओं के चक्र में आया हुआ है, इसी कारण मानव सांसारिक, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और पांथिक उलझनों में आकर दौड़ धूप करता रहता है। कर्म, योग, ज्ञान क्या है ? केवल मानव की दौड़ धूप ही तो है।

अनेक सज्जन तो मेरे जैसे स्वयम् इस मार्ग से होकर अर्थात् दौड़-धूप करने के पश्चात् इस अन्तिम अवस्था जहां यह दौड़-धूप नहीं रहती है, जहां पहुंच कर शान्ति को प्राप्त कर लेते हैं, किन्तु यह मार्ग लम्बा है। इसके अतिरिक्त एक और मार्ग है जो सन्तों का मार्ग कहलाता है जहाँ केवल सौ वर्ष की आराधना से ढाई घड़ी का सतसंग श्रेष्ठ होता है। यदि यह शब्द ठीक है तो फिर क्यों न मानव किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग से लाभ प्राप्त करे। मैंने इस कमी को पूरा करने के लिए अपने कर्मभोगवश अथवा मौज आधीन सतसंग का क्रम आरम्भ किया था किन्तु मेरे इस प्रकार के सतसंग से वह जीव जिनका मानसिक व शारीरिक ब्रह्मचर्य गिरा हुआ होता है, बहुत कम लाभ उठा सकते हैं। साथ ही संसार के पदार्थों को उत्कट इच्छा वाले भी पूर्ण लाभ नहीं उठा सकते। इसके अतिरिक्त पक्ष-पाती भी कोरे रहते हैं।

फिर भी अपने कर्मभोगवश में अपने जीवन के अनुभव को भविष्य में टेपरेकार्डिंग मशीन में भर दिया करूंगा जन साधारण उसको सुनकर लाभ उठा सकते हैं।

यदि यह सिद्धान्त ठीक है कि सौ वर्ष की आराधना से ढाई घड़ी का सतसंग श्रेष्ठ है तो मेरा सतसंग सुनने वालों को और ध्यानपूर्वक मनन और साधन करने वालों को अवश्य ही शान्ति और सौख्य प्राप्त होना चाहिए। अधिक साधन की आवश्यकता न रहेगी। यदि नहीं मिलती तो मैं अपराधी हूँ।

यदि जन साधारण को इस प्रकार का लाभ हो जाय तो

यह सिद्धात जो सन्तों का है ठीक होगा अन्यथा नहीं। इससे अधिक और क्या कहूँ। मौज विवशतः मुझे इस ओर धकेले लिये जा रही है।

मेरा निज अनुभव यह है कि 'अनामी पद' तक पहुँचना तो सुगम है और प्रत्येक सन्यासी अवश्य साधन में पहुँचता है किन्तु उसको पता नहीं होता है। शब्दों अथवा वाणी की भरमार चैन नहीं लेने देती क्योंकि अनामी पद, अकाल पद, परमतत्वपन प्रत्येक प्राणी की अपनी ज़ात है, किन्तु राधास्वामी धाम में पहुँचना बिना किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग के असम्भव है। राधास्वामी धाम क्या है ? सहजवृत्ति।

सन्तो ! सहज समाधि भली।

गुरु प्रताप भयो जा दिन ते सुरत न अन्त चली। (टेक)
आंख न मूँदूँ, कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन में हँस-हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ॥
कहूँ सो नाम सुनूँ सोइ सुमिरन, खाऊँ पिऊँ सो पूजा।
गृह उद्यान एक सम लेखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा॥
जहां जहाँ जाऊं सोइ परिक्रमा, जो कुछ करूं सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा॥
शब्द निरन्तर मनुवां राता, मलिनवासना त्यागी।
उठत बैठत कबहुँ न बिसरे ऐसी ताड़ी लागी॥
कहैं कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
दुख सुख के एक परे परमसुख, तेइ सुख रहा समाई॥

खेद है कि शब्द पूर्ण रूप से लिखने में नहीं आ सकते जिससे मैं किसी को पूर्ण रूप से बता सकूं, इसलिये सतसंग अनिवार्य है।

नोट—(१) सतसंगी भाइयों को सूचित किया जाता है कि श्री पं० मामचन्द जी शर्मा का तबादला जालन्धर से अमृतसर

हो गया है। उनके घर का पता ५६ ए० हुसैनपुरा, अमृतसर है। जिन सज्जनों को महाराज जी के सम्बन्ध में उनसे पत्र-व्यवहार की आवश्यकता हो तो वह इस नवीन पते पर करें।

(२) यदि उर्दू का एक मात्र पत्र पढ़ना चाहें तो केशव-गिरी हैदराबाद से ६) में मँगायें और हिन्दी में चाहते हैं तो ६) मैनेजर 'शिव' दयालनगर अलीगढ़ को भेजकर मँगा सकते हैं। दोनों में महर्षि जी महाराज के उच्च कोटि के लेख होते हैं।

(३) जिन सज्जनों को सन्तों के फोटो, चित्रों आदि की आवश्यकता हो तो वह प्रेमी भाई श्यामराव ८३४ नन्दू कुटिया, नामपल्ली, लालटीकरी हैदराबाद (आन्ध्र प्रान्त) से मंगा सकते हैं।

चेतावनी

कहता हूँ सच घट में, तेरे राधास्वामी धाम है।
घट में सत्गुरु, सत् की संगत, सत् सभा सत् नाम है॥
हो गया बाहर मुखी, तब भूला अपने आपको।
धंस के अन्तर खोज, अन्तर ही में सबका ठाम है॥
मैं तेरे घट का हूँ बासी, और नहीं तुझसे पृथक।
मिलता हूँ, चिन्ता जिसे, मेरी ही आठों याम है॥
राधास्वामी धाम का दर्शन, जो घट में अपने हो।
जीते जी निरवाण, सुख, आनन्द और, विश्राम है॥

———

तेरे घट में राधास्वामी, राधास्वामी नाम है।
घट के भीतर तू परखले, राधास्वामी धाम है।
एक कर व्यवहार परमारथ, जो दीक्षा मिल गई।
शब्द के साधन में लगजा, शब्द से विश्राम है॥

लाभ और हानी को चिता, को आने चित में दे।
काम कर मन को लगाकर, काम ही से काम है॥
जिसके मन में शान्ती हो, भ्रान्ती का काम क्या।
भ्रान्ती व्यापे नहीं, तब शान्ती आठों याम है॥
जिसने गुरु को मुख्य समझा, कहते हैं गुरुमुख उसे।
भय नहीं है भेद का, नहिं डंड का नहिं साम है
दास को दुर्लभ नहीं, कृतकार्यता गुरु दया से।
प्राप्त उसको धर्म अर्थ, और मोक्ष है और काम है॥
राधास्वामी सब जगह हैं, सिंध में और बुन्द में।
मोती और मूंगे में भी, यह समझ विश्राम है॥

—= =—

कर्मभोग अथवा मौज

ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब जो महाराज

क्या मौज का खेल है, जिन्दगी बनी और तलाश हुई।
खोजते खोजते अहा! मेरी जिन्दगी कुछ की कुछ हुई॥
उस मालिक की तलाश थी, वह दोस्ता क्या निकला।
कर्म भोग वश कह रहा हूँ, सुनलो कि वह क्या निकला॥१॥

आज नगर में सतसंग था। मेरे बसरे बग़दाद के कुछ मित्र भी आये हुए थे। जेष्ठ मास का शब्द 'बारह मासा' 'राधास्वामी सारवचन' पोथी से निकला। मैंने निज अनुभव के आधार पर अपते पुराने पुराने मित्रों के लिये अपना अनुभव वर्णन किया। विचार आया कि मनुष्य बनो के पढ़ने वालों को भी बता जाऊँ। शब्द को पोथी से पूरा स्वयं पढ़ें। संक्षेप में कहता हूँ, वह भी अपने जीवन के आधार पर। मुझे कुछ चेतनता हुई क्योंकि मैं कुछ चाहता था। प्रत्येक मानव किसी न किसी इच्छा अथवा वासना के अन्तर्गत इस संसार में विचार करने और कर्म

करने के लिए विवश है। जीविका उपार्जन का यत्न विद्या-बुद्धि प्राप्त करने का विचार ईश्वर परमेश्वर और परमात्मा के मिलने की लालसा और उसका साधन, मुक्त की इच्छा, तात्पर्य यह कि सब कुछ जो मैंने किया अथवा दूसरे करते हैं, सबके सब किसी वासना के अन्तर्गत करते हैं। और इस वासना में एक प्रकार की लग्न है। जहाँ लग्न है वहां तपन और तड़प विद्यमान है। जीवन इसी धुन में व्यतीत हो जाता है।

"जेठ महीना जेठा भारी। जीवन हृदय तपन करारी"॥

इस तपन से न गृहस्थी न विरक्त, न भक्त न योगी न ज्ञानी न ध्यानी, न तपी, न ऋषी, न मुनि, न गुरु, न शिष्य-कोई भी वंचित नहीं है। तपन, लगन अथवा आस के रूप विभिन्न हों किन्तु तपन विद्यमान है। जो इस तपन से बचना चाहते हैं उनके लिए इस तपन को समाप्त करने का क्या उपाय है।

"संत दयाल जीव अधिकारी। भेद कहैं वह निजकर भारी॥"

वह भेद देते हैं कि एक ऐसा स्थान भी है जहां यह तपन नहीं है। जहां आस या वासना नहीं है। मैं स्वयं चैतन्य होकर कहता हूँ कि वह कौनसा स्थान है? हे मित्रो! तुम मुझसे बसराबग़दाद में पूछा करते थे, "मास्टर जी कुछ बताओ" तो मैं कहा करता था 'माकू' माकू अरबी शब्द है जिसका अर्थ है कि मैं कुछ नहीं जानता यदि कुछ मिल गया तो बता जाऊँगा। अब समय आ गया है, सुनलो।

मैं किसी समय अपने शरीर मात्र को ही अपना आपा समझ कर शारीरिक बोधभान तक ही सीमित रहकर स्वयं को फ़क़ीरचन्द बनाकर, कर्म करता था और शारीरिक रूप में जागता, सोता और सुषुप्ति का आनन्द लेता था। यह तपन विद्यमान थी। इसको शान्त करने के लिए, प्रेम, भक्ति, सुमिरन, ध्यान किया करता था। तम्बूरा बजाता, कभी प्रेम के शब्द

गाता। अन्तर में दाता की मूर्ति को प्रकट करके प्यार करता रहता था। प्रसन्न होता, आनन्द लेता, किन्तु यह तपन विद्यमान रही। फिर अन्तर में शब्द प्रकाश प्रकट किया करता था। घंटा, शङ्ख, ओ३म्, सारंगी, बाँसरी, बीन से सुना करता था, किन्तु तपन विद्यमान थी। बैठकर कानों में उंगलियां डालता था। दो वो घंटा साधन करता। वहाँ भी तपन विद्यमान रहती थी।

दातादयाल महर्षि जी की पवित्र, पुनीत विभूति का कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने मेरी इस खोज के जीवन में सहायता की। मैं अपने अज्ञान से भ्रम से सब कुछ करता था। जब मैं बसरे बग़दाद में था तो दातादयाल ने एक शब्द लिखकर मेरे पास भेजा था वह सुनाता हूं।

तू फ़क़ीर है कैसा भाई, भूल भरम में आया क्यों चितलाया क्यों ?
तज अज्ञान की बातें जल्दी, ज्ञान ध्यान बिसराया क्यों ?
अँखियां उलट तमाशा देखें, अन्तर की लीला न्यारी।
सब कुछ अन्तर तेरे भरा है, इससे आँख हटाया क्यों ?
गुरु तो तेरे घट के बासी, तू गुरु घट में रहता है।
मैं तू भूल भरम है प्यारे, यह सिद्धान्त भुलाया क्यों ?
बाहर भीतर गुरु हैं व्यापक, कहीं राजा कहीं प्रजा है।
चेले में गुरु गुरु में चेला, नहीं तो उसे चेताया क्यों ?
आप आपको आप पिछानो, राधास्वामी की है बानी।
कहा और का नेंक न मानो, यह बानी बिसराया क्यों।

किन्तु बात पूर्ण रूपेण समझ में न आती थी। अन्त में इस बात को या रहस्य को समझाने के लिए दातादयाल ने 'आचार्य पद' भी मुझको दिया। इस कर्म ने मुझको रहस्य समझा दिया। वह कैसे ?

तुमको स्मरण होगा कि मैं रात-दिवस, संध्या प्रातः दाता-

दयाल को ही स्मरण किया करता था। मेरे अन्तर वह प्रकट हुआ करते थे। अनेक बार मन के साथ भी युद्ध किया करता था। और पुकार करता था। दातादयाल के आज्ञा पालन ने मेरी दृष्टि खोल दी। सतसंगियों के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया कि वह फ़क़ीरचन्द जो उनके अन्तर प्रकट होकर पथ प्रदर्शन करता है, अथवा बातें करता है अथवा अन्तर की चढ़ाई कराता है फ़क़ीर चन्द नहीं होता फिर वह कौन होता है ? प्रत्येक प्राणी भी अपना ही विश्वास आस और विचार होता है। वह प्रकाश और शब्द जो अन्तर में गूँजता है, यह वह है जो मेरे शरीर में ऊपर के लोकों से आकर स्थित है। फिर मैं कौन हूँ ? जब इस ज्ञान से मैं अपने आपको शरीर मन प्रकाश और शब्द से पृथक करता हूँ जो मेरे भीतर—

नहीं खालिक़ मख़लूक़ न ख़िलक़त।
कर्ता कारन काज न दिक़्क़त॥
दृष्टा दृष्ट नहीं कुछ दरसत।
वाच लक्ष्य नहिं पद न पदारथ॥
ज़ात सिफ़ात न अब्वल आख़िर।
गुप्त न परगट, बातिन ज़ाहिर॥
राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहिं, कुछ नहिं, कुछ नहिं था सो॥
स्मृति शास्त्र न गीता भागवत।
कथा पुरानन वक्ता कीरति॥
सेवक सेव न दास न स्वामी।
नहिं सतनाम न नाम अनामी॥
कहाँ लग कहूँ नहीं था कोई।
चार लोक रचना नहिं होई॥
जो कुछ था सो अब कह भाखूँ।
उन्मुनि सुन बिसमाधी राखूँ॥

हैरत हैरत हैरत होई।
हैरत रूप धरा इक सोई॥

हे मेरे मित्रो! अब मैं कौन हूँ? मैं आश्चर्य रूप सनातन हूँ। खुद को मैं आप ही जानूँ। अपने आपको आप बखानूँ॥

वाणी को पढ़ो। समय नहीं कि इस सत्यवाणी की व्याख्या करूँ और न सतसंग में समझने वाले ही विद्यमान हैं। संक्षेप में कहता हूँ कि प्राणी के तीन शरीर हैं। इनमें जो वस्तु आधार है वह मेरी अथवा प्रत्येक प्राणी की जात है। जात विशेषण के विना नहीं रहती है। इसलिए हमारी वास्तविक जात जो यथार्थ में फ़क़ीरचन्द, दुर्गादास, मंगलसैन, पुरुषोत्तम के अन्दर है उसका पहिला अस्तित्व प्रकाश और अनहद वाणी है यही सतपद, अलख और अगम है। सतपद इस अस्तित्व (प्रकाश और शब्द) की जागृत अवस्था है। अलख और प्रकाश और शब्द भी स्वप्न अवस्था है और अगम उसकी सुषुप्ति है। चूंकि अन्य शब्द नहीं मिले, इसलिए समझाने के लिये इन शब्दों का प्रयोग किया गया है। वाणी को पढ़ो। (सतपद) से धार फूटी और बहुत बड़ा भारी शब्द हुआ। इससे सोऽहं पुरुष अर्थात् हमारे इस जीवन के भीतर हमारे होने का हमको बोध हुआ।

सतपद में तो केवल 'हैपन' था किन्तु 'हैपन' का बोध नहीं था। जिस प्रकार एक स्वस्थ व्यक्ति है तो स्वस्थ, चूंकि रोग का अनुभव नहीं हुआ है, इसलिए उसको स्वास्थ्य क्या होता है, उसका बोध नहीं होता है। और विवश होकर ऐसी असावधानी करता है जिससे रोगी होकर फिर इस स्वास्थ्य के बोध का ज्ञान कर जाता है। इस प्रकार सतपद से प्रकाश पृथक होकर अपनी मानसिक रचना आरम्भ कर देता है किन्तु बिना इस सतपद अर्थात प्रकाश और शब्द के संस्कार अथवा शक्ति से अपनी रचना नहीं करता है। इसलिये दो धारें सतपद से धनात्मक तथा ऋणा-

त्मक आती हैं और तीसरी वह आदि शक्ति प्रकाश और शब्द के साथ रहती हुई इस ब्रह्माण्ड की रचना करती है। हमारे अन्तर हमारा मन बनकर अपनी रचना करता है।

यदि इस दयाल की धार का अनुभव करना हो तो उदाहरण से समझो। पृथ्वी सूर्य का टुकड़ा थी। पृथक हुई किन्तु सूर्य का आकर्षण साथ है और इसी के चारों ओर चक्कर लगा रही है और साथ ही इसकी गर्मी से अपने भीतर रचना करती रहती है और समय के पश्चात इसी सूर्य में लय हो जायगी। इसी प्रकार यह सबका ब्रह्माण्ड अथवा रचना के पश्चात् सतपद (प्रकाश और शब्द) के महा समुद्र में लय हो जायगा।

अब मित्रो ! यदि कोई प्राणी अपनी सुरत को उस सतपद, अलख, अगम अनामी आदि में लय कर सकता है तो उसमें सिद्धान्ततः महान्शक्ति होनी चाहिए। चूंकि मुझे दाता दयाल की परम पुनीत विभूति ने जिन पर मुझको १९०४ में विश्वास आया था, जगत कल्याण का कार्य दिया हुआ है, मैं सचेत होकर चाहता हूँ 'प्राणी मात्र को शान्ति'।

यदि इन अणु बमों आदि से मानव जाति नष्ट होने से नहीं बचती और मानव जाति सीधे मार्ग पर नहीं आती तो यह मानना पड़ेगा कि या तो मैं ही उस अवस्था तक नहीं पहुँचा और या यह इतना विस्तार और रचना आदि का वर्णन और संत आदि की महानता सबकी सब व्यर्थ है। केवल यह एक मानवी मस्तिष्क की उपज है और एक प्रकार का मानसिक आनन्द है। यदि मैं नहीं पहुंचा तो जो इस संतमत के प्रचारक हैं, और सतगुरू कहलाते हैं वह मानव जाति पर करुणा करके दया कर और अपनी शक्ति का उपयोग करें। मुझे चूंकि काम दिया हुआ है, इसलिए, मैं और तो शक्ति नहीं रखता हूँ। न कोई डेरा न समुदाय, न शासन, न सम्पत्ति पास है, केवल एक इच्छा

'जगत कल्याण' की मेरे पास है, वह भी निष्काम, निस्वार्थ होकर विवशतः मौज कार्य की ओर ढकेलती है और जब इस अवस्था प्रकाश और शब्द से उत्थान होता है और सोऽहं गति में आता हूँ तो सोचता हूं प्राणी मात्र को शान्ति।

इस सतसंग में काफी दूर दूर से सज्जन आए हैं। कल कड़ी धूप थी। कोई कोई सज्जन ऐसी धूप में तीस चालीस मील की यात्रा करके पधारे हैं। यह बात मुझे प्रभावित करती है। सोचता हूँ मेरे पास क्या है?

अहा! हे मालिक!! यदि कार्य दिया है तो लाज रख, शक्ति दे कि यह जीव जिस २ कामना को लेकर इतना कष्ट सहन कर अपने विश्वास और श्रद्धा से आये हैं, उनकी मनोकामना पूर्ण हों और उनको शान्ति, सौख्य, प्रसन्नता, सम्पन्नता मिले।

सुनो दुर्गियाँ, मंगलियाँ, परशोतमियाँ तुम सब मेरी उन-मत्तता के साथी रहे हो। क्या पता मेरी उनमत्तता का प्रभाव तुम पर भी हो। जो कुछ मेरा अनुभव था तुम सबको बता दिया। यदि यह राधास्वामी मत की शिक्षा, जिसको मैंने सच्चा पाया है, वास्तव में सत्य है तो जगत का कल्याण होना चाहिए अन्यथा मैं यह कहूंगा—

ऊँचे से ऊँचा भगवान् तेरा कोई भेद न जाने।
थक गए ऋषी मुनी सब सन्त अटक रहे अनजाने॥
तू दयाल, अकाल, आधार, परमपिता दास फ़क़ीर शरनागती।
जो मौज हो वह करालें तू, फ़क़ीर कुछ भी नहीं जाने॥

फिर अपना मार्ग केवल भक्ति-प्रेम है। मैं उस परमतत्व आधार का विश्वासी हूँ। पहिले बहुमुखी था अब अन्तरमुखी हूँ। उस जात दयाल को अपने से भिन्न नहीं मानता हूं। स्वयं को अर्पण करता रहता हूँ। मित्रो! जीवन व्यतीत होगया। प्रसन्न हूँ। शान्ति है। आनन्द है। अचिन्त हूँ। यदि मानवता का

राज्य नहीं आता और संसार के सिर से भय के बादल नहीं टलते तो फिर शान्तमत की शिक्षा के अधिकारी बहुत ही कम रहेंगे। जिनको इस मार्ग की अथवा मानसिक उधेड़-बुन की उन्मत्तता है उनसे यह धार्मिक शिक्षा और पांथिक द्वेष समाप्त न होंगे क्योंकि खोज ने यह सिद्ध किया है कि वह मालिक एक अपरंपार शक्ति है। जिसका किसी को ज्ञान नहीं हो सकता व्यर्थ उसके नाम पर धर्म और पंथ बनाकर मानव जाति ने परस्पर धार्मिक पक्षपात और विभिन्न पार्टियां बनाली हैं। प्राणीमात्र को शान्ति।

पूर्ण पुरुषों की महानता

(ले॰ दातादयाल महर्षि जी महाराज)

पूर्ण पुरुष जो इस रहस्य को जानते हैं, यहाँ तक हम उनको वास्तविक अर्थों में ऋषि कह सकते हैं। ऋषि जानने वाले और देखने वाले का नाम है। देखने और जानने में अब तक विवेक की अवस्था रहती है। किन्तु जो जानकर और देखकर ज्ञान रूपी सागर से मिलकर एक हो जाते हैं। वह ऋषियों की श्रेणी से भी ऊपर चढ़ जाते हैं। उन्हीं का नाम संत है। सन्त आदर्श और इष्ट का नाम है। जिससे बन्धन की समस्त ग्रन्थियाँ टूटती हैं। वास्तव में उनका नाम और रूप क्या है? नाम और रूप भी बन्धन की अवस्थायें हैं। हम उनके विषय में कुछ नहीं कह सकते। उनकी श्रेणी कहने सुनने से ऊंची है। जिन्होंने ज्ञान में परमात्मा को पा लिया। और ज्ञान से पूर्ण हो गए और उसको पाकर अपने अन्तर आत्मा से मिलकर एक हो रहे हैं, पूर्ण रूप से तृप्त हो गये हैं वह उसे चित्त में साक्षात्कार करके वासनाओं से निरच्छित हो गये हैं और संसार के सम्पूर्ण व्यवहार में उसी की सत्ता को देखकर शान्ति प्राप्त कर ली वह ऋषि थे।

जिन्होंने सब ओर और समस्त पहलुओं से परमात्मा तक पहुँच प्राप्त करके उसमें शान्ति प्राप्त करली है वह सबसे मिले जुले हैं और जगत की सत्ता में पहुंच गये हैं।"

उपनिषद् का कथन है—"तू देने से पायेगा।" लालच न कर। यह देना देने की रीति पर देना और किसी भाँति का लोभ न करना ही सच्चा ज्ञान यज्ञ है. सच्चा कर्म यज्ञ है, सच्चा प्रेम यज्ञ है, सच्चे त्याग हैं और जो लोभ करता है और अपने सीमित और त्रुटिपूर्ण अस्तित्व के विचार में जकड़ा रहता है उससे यह यज्ञ का त्याग नहीं हो सकता।

गुरु को अपना सब कुछ दो। इस भाँति इस देने का आरम्भ करो। शारीरिक मन को शारीरिक गुरु के अर्पण करो। यह कर्म है। मन वाले मन को मन वाले गुरु को भेंट चढ़ाओ। यह उपासना है। आत्मा वाले हृदय को परमात्मा गुरु की भेंट करो। यह ज्ञान है।

राधास्वामी मत तुमको तुम्हारे अन्तर में इन समस्त अवस्थाओं, दशाओं की शिक्षा देता है। कैसा लेना और कैसा देना? केवल कहने की बातें हैं। कौन चेला किस गुरू को देता है और कौन गुरू किस चेले से क्या लेता है। संयम की दृष्टि से यह बातें कही जाती है। कबीर साहब की वाणी है—

शिष्य को ऐसा चाहिए, गुरु को सर्वस दे।
गुरु को ऐसा चाहिए, शिष्य का कछू न ले॥

इस दोहे के भीतर लेने देने का रहस्य छुपा है।

—= =—

चेतावनी

देख दल दल से निकल कर, सीधे तू मारग में चल।
दुख का रस्ता छोड़ दे, कहता हूँ अब कुछ जा संभल॥

प्रेम और परतीत में, आनन्द है यह जान ले।
ईर्ष्या और द्वेष को तज, इनके फन्दों से निकल ॥
रोग मे डर, सोग से डर, भोग से डर, चेत कर।
काल सिर पर आ रहा है, अब ना ममता से मचल ॥
सोने वाले सोया है क्यों, आंख को अब अपनी खोल।
सामने तेरे है गड्ढा, देख मत जाना फिसल ॥
राधास्वामी नाम ले, और नाम में विश्राम ले।
शान्ती के पन्थ में चल, गुरु से लेकर गुरु का बल ॥

❀ ग़ज़ल पीरेमुग़ाँ साहब ❀

बे ख़ाँनुमाँ था रहने को, दिल का मकाँ दिया।
गुम नामोनिशां था, नामो निशाँ दिया ॥
ज़ातो सिफ़ात का नहीं, मेरे कोई पता।
मैंने ही तुझको, दिल दिया और जिस्मोजाँ दिया ॥
बन्दा न होता, फिर था खुदा का, कहां वजूद।
पत्थर का बुत बना दिया, नुक़्को ज़ुबाँ दिया ॥
तूने एवज़ में क्या दिया, आवारा कर दिया।
ज़ालिम ! अज़ाब, जिस्मो जिगर, बेगुमाँ दिया ॥
फ़र्शे ज़मीं पे पांव के, रखने की देर थी।
पामाल करने के लिए, संग आस्माँ दिया ॥
चक्की के पाट दोनों, ज़मीं आस्मां बने।
नीचे ज़मीं तो ऊँचे, बुलन्द आस्मां दिया ॥
अहसान एक तेरा है, बेशक बहुत बड़ा।
मस्ती की मय पिलाने को, 'पीरेमुग़ां' दिया ॥

दोहा—चलती चक्की देख कर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय ॥

तिनका कबहुँ न रूंदिये, जो पावों तल होय।
उड़कर आँखों में पड़े. पीर घनेरी होय॥

क्रोध न कीजिये साधवा, क्रोध भरम की आग।
क्रोध अग्नि तन में लगी, जले पुन्य और भाग॥
कर्म जाल अति प्रबल है, सके न कोई टार।
अपनी सी वह कर रहे, दुख पावे संसार॥
जाकी सांची सुरत है, ताका साँचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घड़ी, साँई सेती मेल॥

-)—o—o—(-

परमदयाल जी के प्रवचन अलीगढ़ में शिवरात्रि पर

लिखो लिखो लिखवा रहा हूँ, संसार के कल्याण के लिये।
मजाहबो मिल्लत और पंथों के, मिटवाने के लिये॥
भरम में आकर के दुनियाँ बंट गई, मजाहबो मिल्लत में।
अपना अनुभव कह रहा हूं, जगत को इन्सां बनाने के लिये॥

आहा! मौज से कबीर साहब का यह शब्द निकला—

साधो! एक आप सब माँहीं
दूजा कर्म धर्म है कृत्रिम[१], ज्यों दरपन की छाँहीं। (टेक)
जल तरंग ज्यों जल से उपजे[२], फिर जल मांहि रहाई।
काया भाईं पाँच तत्व की, बिन्से[३] कहां समाई॥
या विधि सदा देह गति[४] सब की, या बिधि मनहिं बिचारो।
आया होय न्याव कर न्यारो, परमतत्व निरवारो[५]॥
सहजे रहे समाय सहज में, ना कहिं आय न जावै।
धरै न ध्यान करै नहिं जप तप, राम रहीम न गावै॥
तीरथ बर्त सकल[६] परित्यागे,[७] सुन्न डोर नहि लावे!

१-मायावी, २-पैदा हो, ३-नष्ट होकर, ४-दशा, ५-जांचो, ६-सब, ७-छोड़े।

यह धोखा जब समझ परे तब, पूजै काहि पुजावे ।।
जोग जुक्ति से भर्म न छूटे, जब लग आप न सूझे।
कहें कबीर सोई सतगुरु पूरा, जो निज आपा बूझे ।।

दातादयाल जी ने इस शब्द की टीका की है जो इस प्रकार है । आप ही आप वह सब में रमा हुआ है । सब कर्म धर्म जो उसकी खोज में किये जाते हैं कल्पित हैं और इनकी दशा बिम्ब और प्रतिबिम्ब के सदृश है । बिम्ब रूप है और प्रतिबिम्ब छाया है दोनों की वास्तविकता एक ही है किन्तु यह अर्थ नहीं कि दोनों एक हैं, तात्पर्य यह है कि छाया अपनी सत्ता नहीं रखती । उसको सत्ता रूप के आधार पर है । प्राणी अक्स (प्रतिबिम्ब) को देखकर कर्म, धर्म और कृत्रिम पूजा में लगे हैं। यह नहीं होता कि उसको देख कर स्वरूप की ओर ध्यान दें। इसी से धोखा और भ्रम फैलता है । यदि निज रूप की ओर दृष्टि चली जाये तो वह एक आप सब में दिखलाई देने लगे ।

पानी में लहर, बुलबुले. झाग सब उत्पन्न हो होकर उसी में रहते हैं और उससे बाहर नहीं होते । इसी प्रकार यह शरीर पांच तत्वों की झांई अथवा अक्स है । यह भी उसी एक में लय होकर समा जाती है जैसे दर्पन का अक्स दर्पन के उलट देने से आकृति की ओर लौट जाता है ।

सब शरीरों की यही दशा है ! इसी पर विचार करो। और यदि शरीर कहीं और किसी स्थान से आकर उत्पन्न हुआ है तो उसकी जांच क्यों नहीं करते ? किसने रोक रक्खा है ? न्याय से कार्य लो । निर्पक्ष होकर इसकी जांच पड़ताल करके उस परम तत्व को समझो ।

जिस समय ज्ञान और विवेक से यह बात समझ में आ गई फिर सहज में सहज मिल गया । आने जाने, जन्मने, मरने (आवागमन) का भ्रम आप मिट रहा । अब न किसी के ध्यान

धरने की आवश्यकता शेष रही, न जप तप ही से काम रहा और न राम रहीम के नाम रटने की आवश्यकता रही।

और यही नहीं किन्तु तीर्थ व्रत का भ्रम भी मिट गया। सुन्न मँडल में सुरत की डोर लगा कर पहुँचने की भी आवश्यकता नहीं रही। यह सब भ्रम ही भ्रम था। धोखा ही धोखा था। अब कौन किसको पूजे? और किससे पुजावे? और क्यों पुजवावे?

लाख परिश्रम करो, योग की युक्ति से यह भ्रम मिटने वाला नहीं है। जब तक अपना आपा न समझेगा तब तक यह न जायेगा। पूरा सतगुरु हम उसी को कहते हैं जिसने अपने आपे को समझ लिया है।

सार उपदेश

आप आप को आप पिछानो। कहा और का नेक न मानो॥
(सत्पुरुष राधास्वामी दयाल)

कबीर साहब ने इस शब्द को साधुओं को सम्बोधन करके कहा है। साधू वह है जो साधन करता है, निर्वाण और मुक्ति की खोज के क्रम में साधन में लगा रहता है। मैं इन धर्म और पंथ वालों को जो उस परमात्मा से मिलने के भिन्न भिन्न उपाय, विधि, जप तप करते हैं जिसके कारण हम भारतवासी अथवा मानव जाति तथा राष्ट्र आपस में बँट गए हैं, यह कहना चाहता हूँ :—

वह जो आप हैं जिस आपको संसार खोज करता है उस आपकी मैंने अपने जीवन में खोज की। वह आप क्या है? मैं वर्तमान समय की बुद्धि रखता हुआ इस परिणाम पर पहुंचा हूँ कि हम सब प्रकाश हैं। यद्यपि उससे परे भी कुछ है किन्तु साधारण बुद्धि वाले उसे समझ नहीं सकते।

वर्तमान युग का विज्ञान यह सिद्ध करता है कि हमारी

पृथ्वी किसी समय सूर्य्य का एक टुकड़ा थी और उससे पृथक होकर उसके चारों ओर घूम रही है। जिस समय यह ठंडी हुई उस समय सर्व प्रथम बनस्पति उत्पन्न हुई। फिर और ठंडा होने से घास फूंस उत्पन्न हुई। फिर उसमें जीव जन्तु, कीड़े मकोड़े आदि उत्पन्न हुए। फिर पशु मानव जाति। इस प्रकार जितनी रचना इस पृथ्वी लोक में हुई यह सब की सब उस प्रकाश अथवा सूर्य का दूसरा रूप है। धर्म और पंथों की बातों को छोड़ो वर्तमान विज्ञान ने यही सिद्ध किया है। कि समस्त रचना में जो वस्तु है वह प्रकाश ही तो है। तुम्हारे भीतर जब तक गर्मी है तुम जीवित हो, जब प्रकाश अथवा गर्मी नहीं रहती तो तुम मर जाते हो। कहा जाता है कि रूस के विज्ञान वेत्ता दो तीन दिन के मरे हुए पशु पक्षी और व्यक्तियों को कुछ दिनों के लिए जीवित कर देते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि संसार में जो कुछ भी है वह प्रकाश ही है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। शेष जो कुछ दृष्टिगोचर होता है, वह इस प्रकाश की छायामात्र है। यदि हम धार्मिक और पाँथिक जगत के अनुसार यह मान लें कि जिसे संसार परमात्मा कहता है, जिसको हम जानते नहीं, केवल विश्वास करते हैं वह प्रत्येक स्थान पर विद्यमान है तो मैं सबसे प्रश्न करता हूँ कि हे आचार्यो! महापुरुषो! महात्माओ! तुम्हारा क्या अधिकार है कि तुमने धर्म तथा पंथ की दृष्टि से किसी को रूसी, किसी को चीनी, किसी को अमरीकी, किसी को अँगरेज किसी को हिन्दू, किसी को मुसलमान, किसी को सिक्ख, किसी को ईसाई, किसी को जैन समझ कर इस संसार में अशान्ति, व्यभिचार, स्वार्थता फैलाई हुई है। जिसके कारण मानव जाति कष्ट और दुःख में फँसी हुई है। धार्मिक द्वेष, साम्प्रदायिक द्वेष राष्ट्रीय दृष्टिसे बड़ापन या छोटापन, अमेरिका बड़ा, रूस बड़ा, चीन बड़ा, और दूसरे छोटे,

इस प्रकार के विचारों ने संसार को दुखी बना दिया है।

इस अज्ञान को मिटाने के लिए कलयुग में सन्त कबीर प्रगट हुए ! उन्होंने सचाई के आधार पर ऐसे ऐसे वचन कहे कि मानव जाति का हित हो सके, किन्तु लोगों ने नहीं माना। मैंने उन्हीं सन्तों की शिक्षा को अपनी वर्णन शैली में प्रगट किया है।

जिस प्रकार मैंने अपना अनुभव जो भिन्न भिन्न पुस्तकों में वर्णन किया है, यदि संसार के बड़े बड़े मस्तिष्क वाले इसकी ओर ध्यान दें तो ससार की समस्त आपत्तियां समाप्त हो सकती हैं।

मैं सुना तथा पढ़ा करता था कि संसार में सत्त अथवा महापुरुष जो प्रकट होते है उनमें महान शक्ति होती है। यदि उनकी शक्ति दूसरों पर प्रभाव डाल सकती है अथवा नहीं, उसकी परीक्षा लेना चाहता हूँ। अनेक बार सोचता हूँ कि जिस ढंग पर परीक्षा चाहता हूँ क्या वह ढंग ठीक है। संभव हो सकता है कि आगे चलकर वह उपाय अस्सी या नब्बे प्रतिशत ठीक हो जाए अथवा शून्यवत् हो जाये।

यह साहस इस कारण होता है कि विज्ञान सिद्ध करता है, कि पारदर्शक गहरे नीले रंग की किरणें किसी स्थूल पदार्थ की मिलावट से निकलती हैं तो उससे परे जाकर प्रकाशमान होती हैं।

यदि स्थूल पदार्थ से बनी बिजली अथवा किरण पत्थरों और पहाड़ों को चीर कर दूसरी ओर भी प्रभाव डाल सकती हैं तो आत्मिक और मानसिक बिजली जो मस्तिष्क से निकलती है वो भी इस ब्रह्माण्ड में फैलनी चाहिए और लोगों के मस्तिष्क भी उससे प्रभावित होने चाहिए।

इसलिए मैं सदैव शुभ संकल्प देता रहता हूं कि मानव

जाति का कल्याण हो, सच्ची बुद्धि प्रदान हो और ईर्षा, द्वेष, घृणा का अन्त हो।

यह कर्म मैं क्यों करता हूँ, नहीं जानता। जिस प्रकार एटमबम के चलने से जो गैस फैलती है वह संसार में प्रभावित होती है, इसी प्रकार प्रत्येक संस्कार फैला करता है। मुझे यह संस्कार मिला है, इसलिए विवश इस ओर घसीटा जा रहा हूँ।

कलयुग में केवल सन्त प्रकट होते हैं जो मानव जाति के कल्याण के लिए अपना संस्कार छोड़ जाते हैं, सन्त दो प्रकार के होते हैं। एक गुप्त रूप से कार्य करने वाले, दूसरे खुले रूप से कार्य करने वाले। दोनों प्रकार के सन्तों के भाव, विचार संसार में फैलते हैं और विद्यमान रहते हैं।

—०—

दातादयाल जी का विनोद

(१) किसी वृद्ध भले मानुष ने एक छोटे बच्चे को रोता देख कर एक पैसा दिया और कहा मिठाई लेकर खाओ और अच्छे लड़के बन जाओ।

बच्चा—यह असम्भव है।

वृद्ध पुरुष—क्यों ?

बच्चा—मैं लड़का नहीं हूँ। लड़की हूं।

—०—

(२) आर्य समाजी (सनातनी से) तुम तेतीस करोड़ देवताओं को मानते हो जिनके नाम और स्थान से भी हम अपरिचित हैं।

सनातनी—इस अपरिचित के कारण ही तो तुम खंडन करते रहते हो। यदि परिचित होते तो कभी भी खण्डन न करते।

—•—

(३) महाजन—मेरा रुपया दे दो।

किसान—दूसरे मास में दूँगा।

महाजन—यही बात तुमने गत मास भी कही थी।

किसान—मैं बात तो नहीं बदलता। जो तब कहता था अब भी वही कहता हूं।

(४) एक भाई के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने अपने दूसरे को तार दिया। 'हमारे घर में तुम्हारा भतीजा आया। खुशी मनाओ।

—०—

भाई ने तार का मतलब नहीं समझा। तार से उत्तर दिया। "मेरे कोई भतीजा वतीजी नहीं है। वह कपटी, लम्पट, चारसौ बीस है। तुरन्त ही पुलिस के हवाले करो।"

—०—

कर्म भोग अथवा मौज

(ले०—परमदयाल फ़क़ीर साहब)

कर्म की गति अटल भाइयो, कर्म यह काम कराता है।
नहीं बस में किसी के है, जो होता है वह होता है॥

मौज मुझे उस परमतत्व सर्वाधार को खोज के क्रम में सन् १९०५ के लगभग दातादयाल महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज की शरण में लेगई। आपने राधास्वामी मत तथा कबीर मत की शिक्षा दी और उस सर्वाधार का साक्षात्कार करने तथा अपनी जात को समझने के लिए 'नामदान' दिया।

मेरी समस्त आयु इसी नाम के जाप और साधन में व्यतीत होरही है और अब भी वही कार्य करता रहता हूँ। किन्तु वह संस्कार जो बाल्य अवस्था से मेरे मस्तिष्क पर पड़े हुए थे राधास्वामी दयाल और सन्त कबीर की वाणी के संस्कारों से भिन्न थे इसलिए मैंने प्रण किया था कि अपना निज अनुभव वर्णन कर जाऊँगा। इसी कारण मेरा यह कार्य मेरा कर्म भोग अथवा मौज है। और अनेक भिन्नताओं के अतिरिक्त एक महान भिन्नता यह थी राधास्वामी दयाल और सन्त कबीर ने इस सृष्टी के रचने वाले का नाम काल पुरुष रक्खा है और उसको निर्दयी और

अन्याई के शब्दों से घोषित किया है और उससे बचने के लिए कबीर साहब ने सत्तनाम आदि और राधास्वामी दयाल ने राधा-स्वामी नाम आदि वर्णन किया है।

संसार वालो ! तुम स्वयं विचार करो कि जिस कर्त्ता पुरुष का समस्त मत मतान्तर वाले पूजन करते रहे हों उसको काल, निर्दयी और अन्यायी आदि के नामों से संबोधन करने वालों को किस प्रकार संसार श्रद्धा और विश्वास ला सकता है। किन्तु मैं स्वयम् उस सर्वाधार के प्रेम में वर्षों रोने के पश्चात् दाता की शरण में गया था मेरा विश्वास वहाँ से टूटा नहीं किन्तु मैं देखना चाहता था कि क्या सन्तों का मालिक कोई अन्य है। इसलिए समस्त जीवन के अनुभव के पश्चात् लिख रहा हूँ कि हां ! सन्तों और उच्चकोटी के महापुरुषों का मालिक यह कर्त्ता पुरुष नहीं हैं वरन् वह दयाल, अकाल, परमतत्व है जो रचना से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है।

प्रश्न—रचना का करने वाला कौन है ?

उत्तर—यदि हम अपनी उत्पत्ति पर ध्यान दें तो हमको निश्चय हो जायगा कि जिस प्रकार इस पृथ्वी का उत्पन्न करने वाला सूर्य है क्योंकि पृथ्वी वर्तमान विज्ञान के अनुसार सूर्य का एक टुकड़ा थी और वही सूर्य अब अपनी किरणों द्वारा इसमें उत्पत्ती, स्थिती और प्रलय करता रहता है अनेक प्रकार के जीव जन्तु, वनस्पति, खाद्य पदार्थ, पशु और मनुष्य आदि उत्पन्न होकर उसी में लय होते रहते हैं इसी प्रकार यह सूर्य अथवा लोक लोकान्तर सबके सब प्रकाश से ही प्रकट हो होकर कल्प कल्पांतरों से बनते बिगड़ते रहते हैं। इसलिए वही सावित्री प्रकाश जो सबका आदि है वही काल पुरुष है। कबीर साहब की आदि वाणी है।

चौदह लोक बसें जम चौदह, तहां लग काल पसारा।
ताके आगे ज्योति निरंजन, बैठे सुन्न मझारा॥
सोलह खण्ड अक्षर भगवाना, जिन यह श्रष्टि उपाई।
अक्षर कला से सृष्टी उपजी, उनही मांहि समाई॥
सहस्र शङ्ख यह अघर दीप है, शब्द अतीत विराजे।
नृत शङ्ख की बहु विधि शोभा, अनहद बाजा बाजे॥
ताके ऊपर परम धाम है, भरम न कोई पाया।
जो हम कहैं नहीं कोई मानै, न कोई दूसर आया॥ आदि २

अब ऐसी स्पष्ट वाह्य बातों का कौन विश्वास करे। किन्तु वर्तमान विज्ञान हमको विवश करता है कि यह वाणी सत्य है। वह किस प्रकार ? रचना प्रकाश सूक्ष्म प्रकृति अक्षर से होती है। यदि संसार में ताप और प्रकाश नहीं तो शारीरिक और मानसिक जीवन दोनों ही समाप्त समझिये। प्रकाश तथा सावित्री आदि की उत्पत्ती स्वयम् सिद्ध नहीं है वरन् यह या तो किसी वस्तु की गति से तथा दो वस्तुओं को रगड़ से तथा किसी वस्तु के संचालन से उत्पन्न होती है। और यों भी प्रकाश अग्नि तत्व की उत्पत्ती आकाश तत्व से होती है जिसका गुण शब्द है। प्रकाश और शब्द का गुण बढ़ना व फैलना है। यह गुण ही उसकी वासना है और इसी वासना तथा बढ़ने का गुण कण कण में विद्यमान है और यही काल है। वासना रूपी संसार है। देखते नहीं हो। कि इसी वासना के अन्तरगत क्या कुछ नहीं हो रहा है हमारा दुख, सुख जो कुछ भी है इसी वासना के अन्तरगत है। भक्त के भीतर भक्ति का भाव उसकी वासना है, योगी को योग की इच्छा वासना है। तात्पर्य यह है इसी वासना का नाम माया है। आदि प्रकाश का आदि गुण वासना (माया) है। ब्रह्म और माया दोनों साथ २ रहते हैं और अनेक प्रकार के लोक लोकान्तर बनते रहते हैं इसमें नाना प्रकार की रचना होती रहती है और सम्पूर्ण जीव

धारी चाहे वह किसी प्रकार के हों दुख, सुख, चिन्ता, अचिंता के अन्तरगत आते रहते हैं। इस विचार से संभव है कि सन्तों ने इस संसार के रचने वाले को निर्दयी और अन्याई कहा हो। स्वामी जी का तथा सन्त कबीर का क्या भाव रहा हो मैं नहीं जानता। मैंने उपरोक्त समझकर उनकी वाणी सत्य समझी है और प्रत्येक व्यक्ति को मानना पड़ेगा कि इस रचना में कोई भी सुखी नहीं है। संसार को देखो। यदि आज कोई स्वस्थ है तो कल रोग ग्रस्त है जीवन के साथ मृत्यु है, सुख के साथ दुख है।

तन घर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हूँ, सबका किया विवेका हो॥
घाटे बाढ़े सब कोई दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो।
शुक आचारज दुख के कारन, गर्भ से माया त्यागी हो॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तापस को दुख दूना हो।
आशा तृष्ना सब घट व्यापे, कोई महल न सूना हो॥
सांच कहूँ तो कोई न माने, झूँठा कहा न जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो॥
अवधू दुखिया भूपत दुखिया, दुखी रंक विपरीती हो।
कहें कबीर सकल जग दुखिया, सन्त सुखी मन जीती हो॥

इस अनुभव तथा समझ के आधार पर यह बात ठीक प्रतीत होती है कि यदि मानव चाहता है कि सदैव के लिए इस काल अर्थात् प्रकाश और शब्द से जो रचना होती है और जिसके कारण हम दुख सुख जन्म मरण के चक्र में रहते हैं, बच जाँय। तो केवल एक उपाय हो सक्ता है कि वह हम किसी प्रकार से इस प्रकाश और शब्द से निकल जांय। जब तक हम इनमें हैं तब तक कोई शक्ति भी हमको इस त्रगुण आत्मिक रूपी जगत से निकल नहीं सकती और हम दुख, सुख, पाप पुण्य, जीवन मरण से निकाल नहीं सकते। इसलिए सन्तों ने शब्द योग की नींव डाली।

सतयुग त्रेता द्वापर बीता। काहू न जानी शब्द की रीता।
कलियुग में स्वामी दया बिचारी। प्रगट करके शब्द पुकारी॥
जीव काज स्वामी जग में आये। भवसागर से पार लार लगाये॥
तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा। सत्तनाम सतगुरु गति चीन्हा॥ आदि२

संसार वालो! स्वयम् अब विचार करो कि क्या उन सज्जनों के लिए जो सदैव के लिये इस आवागमन से रहित होना चाहते हैं अथवा भवसागर से पार जाना चाहते हैं कोई और उपाय है तो बता दो। इसलिये इस सन्त मत की शिक्षा केवल उनके लिये है।

विषयों से जो होय उदासा। परमारथ की जा मन आसा।
धन सन्तान प्रीति नहीं जाके। खोजत फिरे साधु गुरु जागे॥
आदि आदि।

अप्रसन्न न हूजिये। अब यह गुरुत्व और शिष्यत्व समस्त संसार की वासनाओं की पूर्ती का साधन बन गया है:—

गुरु चेला व्यौहार जगत में। झूंठा बर्त रहा॥
कासे कहूँ खोज नहिं काहू। धोखे धार बहा॥
गुरु तो मान प्रतिष्ठा चाहत। शिष स्वारथ संग आन बंधा॥
सच्चा मारग सुरत शब्द का। सो अब गुप्त भया॥
गुरु चेला पाखंडी कपटी। चौरासी में दोउ गया॥
शब्द स्वरूपी शब्द अभ्यासी। अस गुरु मिले तो पार हुआ॥
सुरत वन्त अनुरागी सच्चा। ऐसा चेला नाम कहा॥
गुरु भी दुर्लभ चेला दुर्लभ। कहीं मौज से मेल मिला॥
शब्द सुरत बिन जो गुरु होई। ताको छोड़ो पाप कटा॥
राधास्वामी यों कह गाई। बूझ बचन तब काज सरा॥

यही शिक्षा सनातन धर्म में दूसरे शब्दों में विद्यमान है किन्तु व्याख्या नहीं है। वह शिक्षा है निवासना निइच्छित होने की। वहाँ काल के विरुद्ध पुकार नहीं की गई है किन्तु निर्वासना होने की शिक्षा विद्यमान है। निःवासना बनने के अन्तरगत निष्काम कर्म करने का संकेत है। उनका आन्तरिक साधन क्या है मैं नहीं कह सकता हूँ। वाह्य रूप में जितने साधन आदि हैं इनमें से अधिकतर प्रवृती मार्ग के श्रेष्ठ बनाने के लिये हैं जिनमें शुभ संकल्प मस्तु का सिद्धान्त काम करता है और जन साधारण के लिये यही सिद्धान्त मुख्य होना चाहिए किन्तु निवृती मार्ग के अधिकारी बहुत ही कम होते हैं। मैं अपने आप से प्रश्न करता हूँ फक़ीर ! संसार को धोखा मत दे। तू ही बता कि इस भवजल के परे अथवा इस काल की रचना के परे क्या है ? अपना अनुभव बताना दूसरों का नहीं। स्मरण रखना कि जिस प्रकार तुम दूसरों की रोचक और भयानक बातें सुनकर जीवन में भ्रांतमय हो रहे हो, हो सकता है कि तेरी इस वाणी से भी कोई भ्रांतमय होकर इस चक्कर में आजाय। आहा !

इस देह मन शब्द प्रकाश के परे, लामकानी पना आ जाता है।
इस लामकानी पने में मित्रो, फ़क़ीर खुद को भूल जाता है॥
न वहां मुझे याद मालिक रहती है, न दयाल ही याद आता है।
मगर एक है अवस्था सुन्दर, जिसका हैपना रहता है॥
न वहां दुख है न सुख है, हो किसी जब यह जिन्दगी ही नहीं।
अफ़सोस है मुझे यही कि, वह अनुभव कहा नहीं जाता है॥
बाद मरने के क्या होगा, दोस्तो मैं कह सकता हूँ नहीं।
इस वक्त तक जो अनुभव हुआ, कहे बिन रहा जाता नहीं॥
उतर कर वहाँ से बिचरूं संसार में, अब यह काल मुझे सताता नहीं।
यह जीवन का अनुभव है। मैंने जीवन को क्या समझा ?
लब खुले और बंद हुए, यह राज़ो ज़िन्दगानी निकला।

वह मालिक जिसको ढूढ़ता था, लामकानी निकला ॥
है क्या वह जानता हूँ, मगर ब्यान कर सकता नहीं ।
खोज का अन्जाम यह है, कि वह सुम बकुम निकला ॥

इस अनुभव के आधार पर कहना चाहता हूँ:—

यह मज़हब मिल्लत पंथ, काल माया के खेल हैं ।
रचना यह सारी दोस्तो, मुख़्तलिफ़ तत्वों के मेल हैं ॥
कार साज़े कुल जहां ने, खेल खेला न्यारा ही ।
इसके खेल में दुख सुख के सारे झमेल हैं ॥

आज प्रश्न यह है कि इस काल ने संसार क्यों रचा ?

दातादयाल से भी अनेक सज्जन यह प्रश्न किया करते थे इसलिये कि तुम यह खोज करो कि रचना क्यों हुई । मैंने खोज की मेरा उत्तर है कि यह रचना स्वाभाविक है।

एक परम तत्व है वह गति में रहता है उसकी गति के कारण शब्द और प्रकाश का होना अनिवार्य है। यह शब्द और प्रकाश बढ़ता है और फैलता है और नई नई रचना अथवा लोक लोकान्तर आदि बनाता रहता है परन्तु उसकी रचना अपूर्ण रहती है। इसलिये इसमें एक तीसरी शक्ति आकर इसकी रचना को पूर्ण करती है। उस तीसरी शक्ति का नाम सुरत है और यह सुरत उस परम तत्व की किरण है। जब यह इससे निकल जाती है तो वह अस्तित्व जो शब्द और प्रकाश ने बनाया था वह भी नहीं रहता है। इसलिये प्रत्येक जीवन की रचना एक ही बार होती है। जिसको ज्ञान हो जावे कि मैं कौन हूँ फिर वह इस रचना में नहीं आता है। संसार जैसा है वैसा रहेगा इसका उल्लेख पोथी 'सार वचन' सुरत और स्वामी के संवाद में है।

सुरत पूछती है कि इस बार तो हे स्वामी आपने मुझे इस काल अर्थात प्रकाश और शब्द को सौंप दिया । क्या पता आप

फिर न ऐसा करें। उत्तर में स्वामी जी कहते हैं "एक बार यह मौज जरूर'।

इसका अर्थ मैं यही समझता हूँ कि मनुष्य ने ज्ञान प्राप्त किया अपने बुन्द रूप को जान लिया तो फिर वह कब आयेगा और कब जायेगा ? ज़ात में ज़ात मिल गई राम कहानी समाप्त हुई। संसार जैसा है वैसा ही है।

इस अनुभव से मुझे अब शान्ति है। मैं इस निज अनुभव के आधार पर:—

मैं न ब्रह्म बना न खुदा ही बना, न जीन बना और न आत्मा।
मैंने समझ लिया मैं हूँ क्या, मैं हूँ फक़त इक बुलबुला॥
तमव्वुजे हस्ती से बना आय, फंसा इस देश में।
अपने आने की ससझ नहीं थी, उठाया दुख सुख घना॥
दाता मिले जिन नाम दिया, मेरा रूप मुझे बताया।
जब से समझा रूप अपना, अब न दुख सुख में आया॥
भेस बदल कर मित्रो, अब संसार को चिताता हूँ।
ऐ इन्सांन अपने अज्ञान वश तू काल चक्र में आया॥

किन्तु अभी एक बात की परीक्षा शेष है कि क्या ऐसे पुरुष में जो अपने रूप को पहिचान कर शान्त जीवन व्यतीत कर रहा है वह किसी के लिए कुछ कर सकता है ? चेतावनी देना और बात है। कोई माने तो और बात है। किन्तु क्या उसके अपने पास कोई शक्ति है। इसकी परीक्षा करनी है। इसलिए अभी इसी काल चक्र के खेल का साक्षी हूँ और चाहता हूँ प्राणी मात्र को शान्ति। यदि कुछ वर्षों में मानवता आजाय और यह अशान्ति, भय, संकट, अन्याय अत्याचार जो हो रहे हैं इनमें कमी आजाय तो संसार मान ले कि ऐसे पुरुष में शक्ति होती है वरन् मैं कहे जाता हूँ:—

क़ुदरत का भेद न जाना किसी ने, सब अपनी-अपनी कह गये।
जो मौज मालिक है वह होता है, बस में किसी के कुछ न रहे॥
भर्म अज्ञान वश नर भटकता फिरता, कभी यह करे कभी वहकरे।
गुरुँ ज्ञान बिन नर भया अंधा, भटक २ हाँ भटक मरे॥
पंथ, मज़हब बनाने की ख़ातिर, सबने अनेकन बचन कहे।
जब समय आया अमली जीवन का, सारे के सारे ख़ामोश भये॥

मेरे मन में यह विचार आया करता था कि संतों ने इस काल (रचने वाले को) निर्दयी, अन्याई आदि क्यों कहा? यह उनके वश हैं। समय के चक्र से कीई नहीं बचा। इस युग में कोई भी किसी दशा में शान्तिमय नहीं है और प्रत्येक प्राणी भावुकता में आकर अनुचित दशा के विरुद्ध अपनी बुद्धि के अनुसार विरोध कर जाता है। प्राणी शासन के विरुद्ध पुकार कर रहे हैं। पुत्रों को माता पिता से शिकायत है। जीवन के प्रत्येक अङ्ग में यही बात है। इसी के अन्तर्गत सम्भवत: सन्तों ने इस रचना में चूंकि सुख शान्ति दृष्टिगोचर नहीं होती तो इसके बनाने वाले को निर्दयी और अन्याई कह दिया हो। यह वर्णन शेली है। मानवीय भावों के वर्णन करने की। बात भी सच्ची है। दातादयाल ने ऐसे शब्द प्रयोग नहीं किए बल्कि उन्होंने संसार को परिवर्त्तन शील कहा है। मेरे मन को इन शब्दों ने ठेस लगाई थी जीवन इस सचाई को देखना चाहता था जो कुछ अनुभव किया कह दिया। अब शान्ति हूँ और संसार को शान्त की धार देता रहता हूँ ताकि प्राणी मात्र को शान्ति मिले।

दयाल नन्दू भाई जी महाराज के अनमोल बचन

जिनका धन सतनाम है, तिनका जीवन धन।
तिनको सतगुरु तार हैं, बहुरि न धरिए तन॥

जिनकी दृष्टि साधन करने वालों के क्रियात्मिक रूप से उच्चकोटि को पहुँच चुकी है उनको तो कुछ कहना सुनना नहीं है किन्तु जो केवल बाह्य ज्ञान की सहायता से कल्पित रूप में अपने आपको एकत्व, ब्रह्म तथा जात के केन्द्र में स्थित करना चाहते हैं उनके लिए यह आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता है क्योंकि अभी उनमें दृढ़ता नहीं आई है। यह दृढ़ता मौखिक वार्तालाप तथा तर्क कुतर्क से नहीं प्राप्त होती है वरन् इसका प्रभाव मन पर पड़ता है और वह निर्बल हो जाता है और यही कारण है कि विद्वान और वाचक ज्ञानी अध्यात्मिक की सम्पदा से बंचित रहते हैं। विद्या के साथ साथ आरम्भिक सोपानों में साधन अनिवार्य है। साधन, दृढ़ता और थिरता प्रदान करता है। मौखिक ज्ञान बाचाल और नीच प्रकृति का बनाता है। सांसारिक विद्वान असख्य बातें बनाये किन्तु उनमें मन और आत्मा के त्याग का पदार्थ कठिनता से आता है जो सत्य ज्ञानी तथा अभ्यासी में होता है। गुरू नानक साहब की दसवीं पीढ़ी तक के समय तक अध्यात्म की बाढ़ आगई थी और जीवन सत्यता के साँचे में ढलने लगे थे किन्तु वर्तमान समय में पुस्तकों की बाढ़ आई हुई है जिससे प्राणी बहुधा मक्कारी के साँचे में ढलते जा रहे हैं। जो कुछ वह कहते हैं यथार्थ में हैं नहीं। इसलिए उनकी बातों का प्रभाव न उन पर पड़ता है और न उनके विश्वासी और अनुयाइयों पर पड़ता है। जिनको अब तक साधन अभ्यास और सच्चे गुरू के चरण कँवलों में झुकने का अवसर नहीं मिला है उनको यह गुरु जो शिष्टाचार स सबंध रखते हैं बताये जा रहे हैं। यदि इनको वह हृदयांकित कर लेंगे तो लाभ होगा और क्या आश्चर्य कि वह कभी सच्चे बनकर अपना कार्य सिद्ध करलें।

१—अपने ज्ञान पर कभी घमण्ड न करो। ज्ञानी और अज्ञानी दोनों की बातों को ध्यान पूर्वक सुना करो क्योंकि बहुधा

अज्ञानियों की बातों में भी रहस्य मिल जाता है। ज्ञान और बुद्धि की कोई सीमा निश्चित नहीं है।

२—जब कार्य हो जाय और अधिक मान, प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाय तब इससे पीछे हट जाओ। यदि उसी में निरन्तर लगे रहोगे तो मान प्रतिष्ठा और भलाई तुमको कुचल देगी और तुम अपनी स्वतन्त्रता खो बैठोगे। व्यस्तता के पश्चात् एकान्त का बिचार अवश्य रहे।

३—परिश्रम के पश्चात आनन्द और आनन्द के पश्चात परिश्रम यह प्राकृतिक नियम है। जो इसका साधन करते हैं वह बहुत कम धोखा खाते हैं।

४—यदि तुम किसी सम्प्रदाय के गुरू हो तथा आचार्य हो और वह संस्था तुम्हारे आदेश की अनुकरणीय है तो अपने चाल चलन पर कभी भी कलंक न आने दो। अपने जीवित और क्रियात्मिक उदाहरण से उनके लाभ के कारण बनो। इस क्रम में यदि द्वेश, ईर्षा और शत्रुता के शिकार बनते हो तो किंचित मात्र भी पर्वाह न करो। क्योंकि संसार में बहुधा अच्छे और भले मानुष बुराई के निशाने बनते रहते हैं। तुम केवल काम करो और चलते बनो! अपनी संतुष्टता केवल सत्यता में खोज करो वरन् मारे जाओगे।

सिख साखा बहुतक किये, सतगुरु किया न मीत।
चाले थे सतलोक को, अन्त ही अटका चीत॥

५—बिना पूछे हुये कभी बात न करो और पूछे जाने पर कभी मौन न रहो। संभव है तुम्हारी शिक्षा पथभ्रष्टों के लिये उदाहरण हो जाय। व्यर्थ अनाप शनाप वार्तालाप करने से निज मान के खोने का भय रहता है।

६—जहाँ सत्कारक बिठाये वहाँ बैठो। स्वयं उच्च स्थान पर बैठने का कभी विचार न करो। मन में नम्रता हो। दूसरों

के आदर मान का विचार और सबके साथ प्रेम भाव रहे।

७—अपनी जीविका स्वयं उपार्जन करो। भूल कर भी कभी कुत्तों की भांति दूसरों के टुकड़ों पर दृष्टि न डालो वरन् तुमको चाटुकारी करनी पड़ेगी और उच्च भाव नष्ट भ्रष्ट हो जावेंगे।

८—यदि तुम निम्न श्रेणी के व्यक्ती हो तो तुमको बड़ों की सेवा का विचार रहे और यदि बड़े हो तो छोटों की सेवा और प्रीति का दम भरो और सबके साथ प्रेम का व्यवहार रहे।

९—अच्छे पति बनो और पत्नी के प्रेम का विचार रक्खो अच्छे पुत्र बनो और माता पिता की सेवा के नियमों को न भूलो अच्छे भाई बनो और भाइयों के काम आओ। अच्छे सेवक बनो और स्वामीपन के नियम को निभाओ। अच्छे मित्र बनो और मित्रों की मित्रता का मान करो। अच्छे स्वामी बनो और अपने सेवकों को प्रसन्न रक्खो।

१०—यदि बुद्धिमान होना चाहते हो तो सर्व प्रथम अपने घर, मन और मस्तिष्क को श्रेष्ठ बनालो। पत्नी को भी सम-विचार का बनालो जिससे कि प्रतिदिन के विरोध का भय न रहे। जो व्यक्ति पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं वह व्यर्थ का दुख मोल लेते हैं। पुरुष सीधा और स्त्री बाँया हाथ है। पुरुष निर्भयता और प्रेम का चित्र है और पत्नी नम्रता और आनन्द का रूप है। जब दोनों मिलकर सम विचार के रहते हैं तभी संसार में आनन्द प्राप्त होता है और शान्ती मिलती है।

११—इच्छा के विचार से इच्छा न करो। विद्या के चार से विद्या न पढ़ो। धन के विचार से धन को न ढूंढ़ो। के विचार से योग न करो। समाधी के विचार से समाधी गे। क्यों कि यह स्वयं लक्ष्य नहीं है केवल कारण हैं। के विचार से मार्ग पर चलते हो अथवा ध्येय पर

पहुँचने के विचार से इस बात को भली प्रकार समझलो और तुम बुद्धिमान हो जाओगे। कार्य कुछ और है और कारण कुछ और है।

१२—संसार को संसार के मार्ग में छोड़ो। किसी के साथ व्यर्थ में तर्क कुतर्क न किया करो। तुमको अपने काम से काम रखना है। जो औरों के पीछे पड़ते हैं वह अपना समय, धन, मन, मस्तिष्क और जीवन नष्ट करते हैं।

१३—कार्य इस प्रकार करो कि तुम भी प्रसन्न रहो और दूसरे भी प्रसन्न रहें किन्तु जो प्राणी अपनी प्रसन्नता दूसरों के आश्रित कर लेते हैं वह मूर्ख हैं। तुम अपने घर में दीपक जलाओ यदि दूसरे उससे लाभ उठाते हैं अच्छा है। तुम अपने घर के चारों ओर फूल फल के वृक्ष लगाओ। यदि अन्य भी उसकी सुगन्ध और फलों से लाभान्वित होते हैं तो अच्छा। तुम बे परवाह बने रहो।

१४—तुम भले तो जगत भलो। तुम डूबे तो जगत डूबा। तुम प्रसन्न तो सम्पूर्ण संसार प्रसन्न। तुम्हारा मन स्वच्छ है तो प्रत्येक स्थान पर सत्यता दृष्टिगोचर होगी और यदि तुम मन के मलीन हो तो संसार भी तुमको मलीन दृष्टिगोचर होगा। लाख बातों की एक बात है यदि कोई इसको समझ सके।

१५—काम करो किन्तु काम में बेकामी रहो। बुद्धिमानी हो किन्तु बुद्धिमानी के अन्तरगत भूल रहे। जाग्रत रहो किन्तु जाग्रत अवस्था में निद्रा देवी का आनन्द लो। पैर फैलाकर सोओ किन्तु सोते हुए भी जागते रहो। किसी को पता भी न लगे कि तुम किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत कर रहे हो।

१६—बोलो किन्तु बोलने में मौनता हो। मौन रहो मौनता सहस्रों जिभ्याओं से बोलती रहे। पूजा पाठ करो उसमें पाखंड न हो और मन पाखण्ड से स्वच्छ और

रहे। दुख में सुख और सुख में दुख सबको अपने में देखो और सबमें अपने आपको देखने का साधन रहे। यही वास्तविक जीवन है! यदि तुमने इसको समझ लिया तो सबको समझ लिया।

१७—खाओ परन्तु खाते हुए भी उपवास की दशा रहे और उपवास में भी तृप्ती रहे। मृत्यु में जीवन और जीवन में मृत्यु का खेल सम्मुख रहे। चमको बल्कि खूब चमको परन्तु चमक के साथ अंधकार रहे। यह महापुरुषों की बातें हैं जो इन पर साधन करते हैं वह प्रसन्न रहते हैं।

१८—प्रकृति का कार्य मौनता के साथ हुआ करता है वायु चलती है, जल बहता है, अग्नि जलती है, फूल खिलते हैं। यह सब अपना अपना काम करते रहते हैं न किसी से कुछ लेते हैं न देते हैं। तुम भी अपना काम इसी प्रकार किया करो। निष्काम सेवा। वह काम ही क्या हुआ जिसका मूल्य लगाया जाय।

१९—आगे बढ़ने के कभी इच्छुक न बनो। पीछे हटकर रहो और तुम आगे आ जाओगे। और सर्वोपरी रहोगे। पीछे रहने वाला आगे आकर प्रथम स्थान ले लेता है। यह ऋषियों का सुनहरी सिद्धांत है और यही कारण है कि भारतवर्ष आज तक जीवित है। अन्य देश आगे बढ़कर पीछे हटाये गये और यह जैसा था वैसा ही है। साहित्य का अध्ययन करो तब यह रहस्य तुम्हारी समझ में आवेगा।

२०—अच्छाई और बुराई केवल मन के अस्थाई भाव हैं पानी कभी पत्थर बन जाता है और कभी पत्थर पानी हो जाता है। दोनों में से कोई भी दशा अधिक ठहरने वाली नहीं है। इसलिए तुम किसी को बुरा और किसी को भला मत कहो। न कोई भला है। जो है वह है। समय समय की बात है। यह दोनों आपेक्षिक, कल्पित, भ्रम युक्त और अनुमानिक शब्द हैं। जिधर मन लगाया उसी प्रकार के बन गये। वास्तविकता जैसी थी वैसी

ही है। यह अध्यात्म का गूढ़ तत्व है।

२१—कोई किसी का मित्र नहीं और सब मित्र हैं। कोई कभी विवश नहीं और सब विवश हैं। यह मन मौजीराम के दृष्य हैं यह हमने अनुभव करके देखा है। तुम विदेह राजा जनक का जीवन चरित्र पढ़ो इस रहस्य को समझ जाओगे।

२२—धन, सम्पत्ति क्या है ? सोधापन, नम्रता, आर्थिकता ऐसे व्यक्ति को किसने नष्ट किया है। अग्नि में जलता हुआ वह तृप्त है और फुलवाड़ो का आनन्द ले रहा है। बाढ़ में डूबता हुआ वह सुरक्षित है। कंगाली में धनाड्य और धनी होता हुआ वह कंगाल है।

२३—नदी, नाले, समुद्र क्यों पर्वतों की जड़ों को खोद कर गिरा देते हैं। पानी की बाढ़ क्यों नगर और जगल को उखाड़ कर फेंक देती है क्योंकि यह सब नीचे रहने के सिद्धान्त को समझकर नम्रता और दीनता का पाठ पढ़े हुये हैं इसलिये इनमें महान शक्ति है कोई इसका सामना नहीं कर सकता। एक तुच्छ बीज संसार में फूलता फलता है और सबकी तृप्ती करता है। यह पृथ्वी में गिरा और धूलको अपने सिर पर उठालिया। नम्रता आई और इसी नम्रता ने इसको ऊँचा पद प्रदान किया और सबको उसको इच्छा रहती है।

२४—ऐ जंगल के सम्राट ! बरगद के वृक्ष तू सबसे ऊँचा किस प्रकार हुआ। तेरा पिता तो राई के कण के समतुल्य एक सूक्ष्म सा बीज था जो अंगुल में भी नहीं आसक्ता था, अब तू इतना विशाल किस प्रकार होगया बतादें।

वह हँसा ? तुमने सब कुछ समझा किन्तु इस रहस्य को नहीं समझा, छोटे कण ने तुमको एक बात बतादी है दूसरी मुझ से सुनो सब पक्षियों को मैं अपने सिर पर स्थान देता हूं, वह मेरी शाखाओं और पत्तों में घोसले बनाते हैं,मेरी छाया में आने से सहस्रों

जीव जन्तुओं को विश्राम मिलता है ! मेरा फल सबका आहार होता है। देखो ! मैं सबकी सेवा सुश्रुषा करता हूं। मेरा जीवन अपने काम नहीं आता वरन् औरों ही के काम आता है। यह मेरी विशालता और महानता का रहस्य है।

२५—कण में सूर्य और सूर्य में कण है। बुन्द में समुद्र और समुद्र में बुन्द है। यह बात केवल गुरू की सेवा और सतसंग में जाने से समझ में आ जाती है। कोई खोलकर किस प्रकार कहे।

—०—

बुंद समाना सिंध में, यह जाने सब कोय।
सिंध समाना बुंद में, बिरला बूझे कोय॥

आवश्यक सूचना

कोई भी महानुभाव महाराज जी को बाहर सत संग कराने के लिये लिवाजाने की प्रार्थना न करें। आगामी अंक में परमदायल जी का पूर्ण लेख इस सम्बन्ध में प्रकाशित होगा।

Surat, June 23.—The Prime Minister yesterday suggested that the people should not press for higher wages for a few years.

Addressing a mammoth meeting here, Mr Nehru said he agreed that wages needed to be increased but it was necessary to remember that the country was poor and very large numbers were going hungry. If funds were diverted to pay more emoluments these very large numbers would continue to suffer for lack of funds.

Th Prime Minister gave the nation a new slogan "aj parish ram kal labh" (toil today for to-morrow's prosperity).

The Prime Minister, who is on a tour of Surat district, told the meeting: I am sure the future of the

country is bright but we must work and work hard."

Mr Nehru hoped the nation would reach the take-off stage within the next 10 years.

The Prime Minister added that India could not hope to make progress "if we do not try to keep pace with the present scientific age."

He said the United States and the Soviet Union had become powerful countries and had increased. their agricultural industrial production by proper application of science.

CASTE SYSTEM

He said another factor which hampered progress in India was the caste system. This caste system must go and everyone should think himself as an Indian first.

Mr Nehru said: "We are trying to give more powers to village panchayats by providing greater administrative facilities to the villages. We have also community development projects which are working in the same direction so that we may be able to work on a more solid basis."

He added that communal parties like the Jan Sangh and the RSS came in the way of progress of the country because their policies were such that they would keep the country static.

Later while visiting an exhibition of zari goods and art silk designs and other handicrafts of Surat organized by the Surat Chamber of Commerce, Mr Nehru said industries benefited the country. India wanted large, medium and small-scale industries. "I would like to have not hundreds or thousand but lakhs of small units springing up all over the country." he said.—PTI.

-)—o—o—(-

❀ मनुष्य बनो के नियम ❀

१—शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिकता के उसूलों का असल दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, अदब, शिष्टाचार, जब्त और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है !

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक, उन्नति कारक तथा देश हित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म पथ या सम्प्रदाय के खंडन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जावेंगे।

५—यह पत्र हर मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा

६—लेखों को घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ़ लिखना चाहिये। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड आना चाहिये

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहिले अपने यहां डाकखाने में पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले वह अगला अङ्क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य जासकेगी अन्यथा नहीं

९—नमूना ।) के टिकट मिलने पर भेजा जा सकेगा।

१०—एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।

११—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनिआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहियें मनीआर्डर कूपन पर अपना पता अवश्य लिखना चाहियें।

मैनेजर—**मुन्शीलाल गोविल (खुश दिल)**

"मनुष्य बनो कार्यालय"

(दयाल कम्पाउण्ड, पेच जामाजी)

वाटर वर्क्स रोड, अलीगढ़ (उ० प्र०)

हमारे यहाँ की पुस्तकें

मनुष्य बनो	हिन्दी	॥=)
विश्व शांति	,,	।-)
मानव धर्मप्रकाश	उर्दू, १॥) हिन्दी	॥।)
विश्व प्रेमी	,,	॥)
[illegible] शब्दावली	,,	॥=)
[illegible] भावार्थ	,,	॥।)
[illegible] धर्म	,,	॥)
आकाशीय [illegible]	उर्दू, ॥) हिन्दी	॥=)
सार भेद	उर्दू [illegible] हिन्दी	॥=)
शब्द सार		॥=)
फ़क़ीर की जीवनी	हिन्दी	॥=)
नय्यरे अनवर	उर्दू	॥।)
आवागमन	उर्दू १) हिन्दी	॥।)
सदाये फ़क़ीर	,,	॥=)
हयाते नौ	,,	।-)
सचाई	उर्दू	।-)
[illegible]ष्णु संहिता	हिन्दी	१॥)
शिव संहिता	हिन्दी	१॥)
बेफ़िक्री	उर्दू	॥=)
[illegible]ाल संहिता	,,	॥।)
सुमेरु पर्वत	हिन्दी	१॥)
गुटका शब्द संग्रह	हिन्दी	।-)
योगी	हिन्दी	।-)
शकुन विद्या	हिन्दी	।-)
दस अवतार	तिरङ्गा	॥)
परमार्थ सुधार	हिन्दी	॥)
उन्नति मार्ग	हिन्दी	॥=)
भाग्य को बढ़ाओ	हिन्दी	।-)
निष्कलंक अवतार	हिन्दी, उर्दू	॥)
विश्व हितैषी	उर्दू	१॥)
तरक्की का राज	उर्दू	॥=)
५० वर्षीय अनुभव	हिन्दी	॥)

३३–यथार्थ शांति संदेश उर्दू ।) हिन्दी	॥)
३४–क़ानूने खयाल हिन्दी	१)
35–Message of Peace	-/10/-
36–Truth & Reality by Faqir in English	-/7/-
37–Real Independence	-/5/-
38–Independence Day Leaflets	-/3/-
39–Letters of Data Dayal	-/12/-

Regd No. A 808

कृपया न मिलने पर निम्न पते पर लौटा दें—

प्रा० संख्या 120 "मनुष्य बनो" कार्यालय

दयाल कम्पाउन्ड, पेच जामा[illegible] अलीगढ़ (उ० प्र०)

श्रीमान् Gajraj Mehskar Secretary
Hindi Pracharsabha
Mahbub Nagar, A.P.
Hyderabad

प्रकाशक व मेनेजर—
[illegible]लाल गोविल [खुश दिल]
"मनुष्य बनो कार्यालय"
[illegible]

[illegible] लाल गोविल 'विश्व प्रेमी' अलीगढ़ के

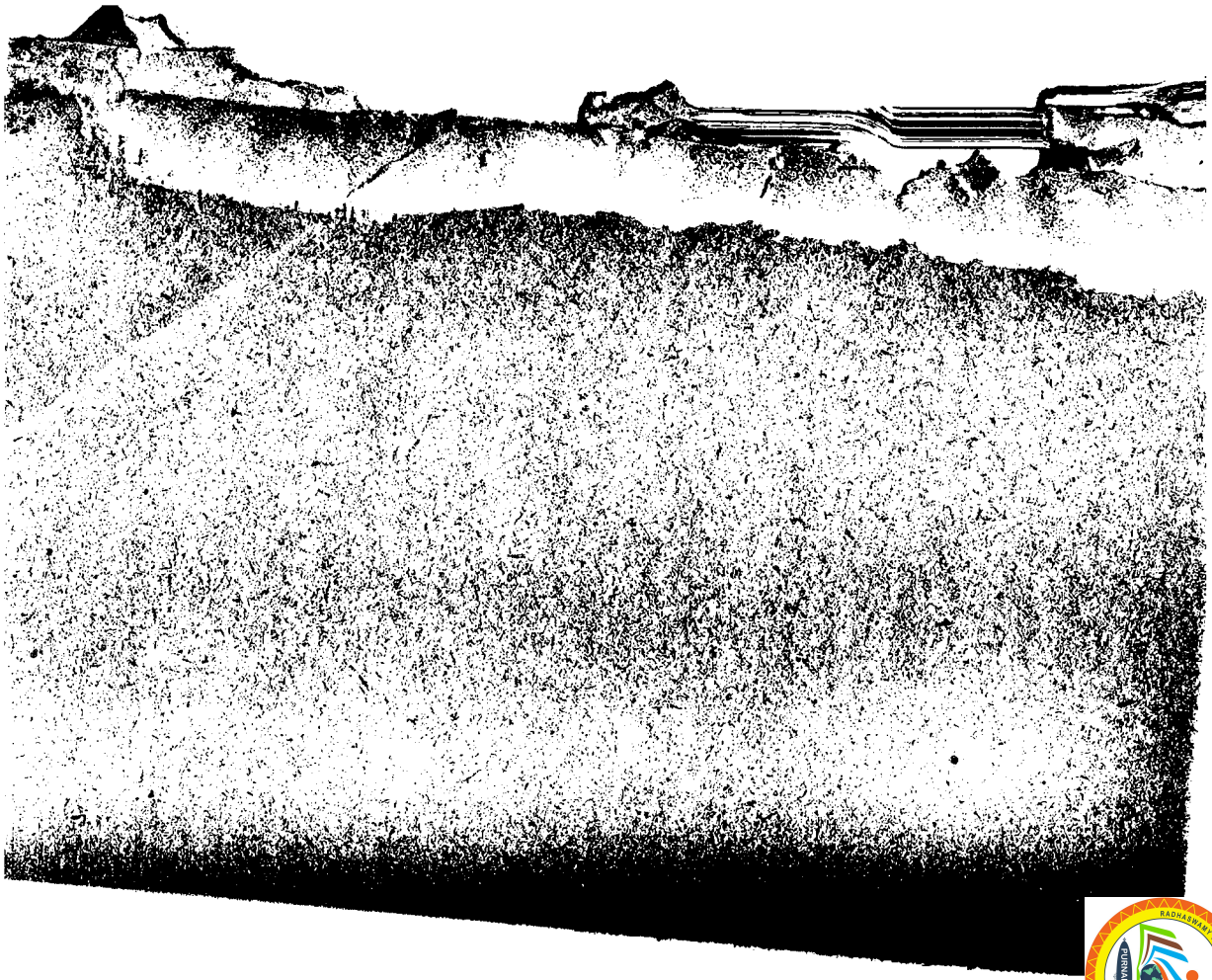

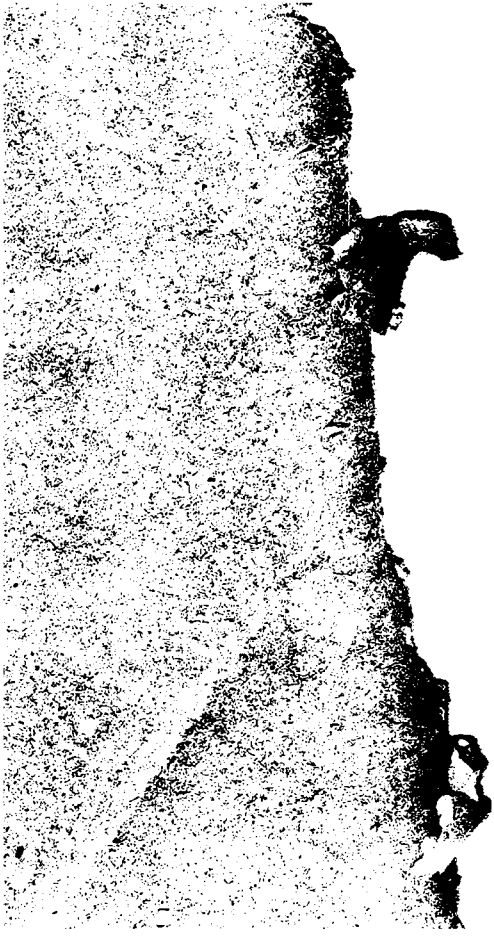

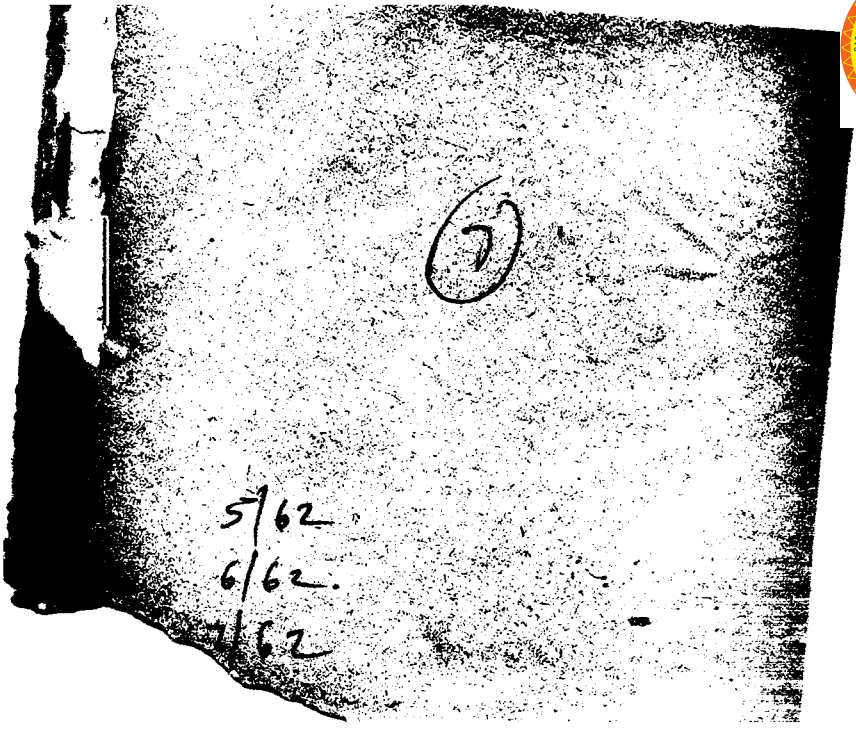

7

5/62

6/62.

7/62

❀ विषय-सूची ❀

क्रमांक	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	हमारी बात	(सम्पादक)	२
२	प्रार्थना	(दाता दयाल)	३
३	गुंजा माली जी की कथा	(दाता दयाल)	४
४	शब्द	,,	५
५	कर्म योग अथवा मौज	(परम दयाल जी महाराज)	५
६	शब्द कबीर साहब	(कबीर साहब)	८
७	कर्म भोग अथवा मौज	(परमदयाल जी)	८
८	वैशाखी दिवस	,,	१५
९	अमूल्य उपदेश	(दयाल नन्दू भाई जी)	१६
१०	कर्ममोग अथवा मौज	(परम दयाल जी महाराज)	१८
११	ग़ज़ल	(पीरेमुग़ाँ साहब)	२२
१२	कर्म भोग अथवा मौज	(परम दयाल जी महाराज)	२२
१३	कलाम	(दाता दयाल)	२५
१४	प्रार्थना	(दाता दयाल जी)	३१
१५	शब्द महिमा	(दाता दयाल जी)	३२
१६	कर्मभोग अथवा मौज	(परम दयालजी महाराज)	३३
१७	,,	,,	३६
१८	कर्मभोग अथवा मौज	(परम दयाल जी महाराज)	३६
१९	कलाम	(दाता दयाल)	३९
२०	ग़ज़ल	,,	४०

प्रकाशक—मुन्शीलाल गोविल, दयाल कम्पाउण्ड, अलीगढ़।

मुद्रक—प्यारेलाल भा, चित्रा प्रिंटिंग प्रेस, अलीगढ़